विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	५
परिचय	४१
लल्लूलाल	५३
सैदल इशा अल्ला खां	१७७
सदल मिश्र	२०४
मक्खन लाल	२१२
राजा शिवप्रसाद	२२२
स्वामी दयानन्द	२२७
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	२५२
राजा लक्ष्मणसिंह	२७३
पं० बाल कृष्ण भट्ट	२७७
पं० प्रताप नारायण मिश्र	२८०
पं० अम्बिकादत्त व्यास	२८८
पं० बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन'	२९२

मध्ययुग में प्राकृत भाषा के अनेक अपभ्रंश रूपान्तर हमारे देश में प्रचलित होने लगे। देश के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाओं का विकास होने लगा। इन्हीं में हिन्दी भाषा का भी प्रादुर्भाव हुआ। उन दिनों की साहित्यिक हिन्दी बोल-चाल की हिन्दी से भिन्न थी। अपभ्रंश भाषाएँ तब तक व्याकरण में नहीं जकड़ी गई थीं। इसी कारण उन्हें साहित्यिक कलेवर नहीं प्राप्त हो रहा था।

परन्तु क्रमशः अपभ्रंश भाषा का भी व्याकरण बना दिया गया। जब यह भाषा नियमों में जकड़ दी गई, तो उसके भेद क्रमशः लुप्त होने लगे और स्वभावतः एक ही अपभ्रंश भाषा का विकास होने लगा और तब साहित्यकारों ने भी उसे अपनाया। जैसा कि हमने अभी कहा है, इस अपभ्रंश का विकास जारी था और एक समय आया कि यह भाषा प्रारम्भ की अपभ्रश भाषा से बहुत भिन्न बन गई। इस अपेक्षाकृत सुसंस्कृत भाषा को 'अवहट्ट' भाषा कहा जाता है। यह कहना कठिन है कि कहां अपभ्रंश समाप्त हुई और 'अवहट्ट' भाषा शुरू हुई। अवहट्ट भाषा का प्रारम्भ बारहवीं सदी से माना जा सकता है। उसे 'पुरानी हिन्दी' भी कहते हैं।

प्राकृत का प्रादुर्भाव संस्कृत से हुआ और संस्कृत का वैदिक भाषा से। प्राकृत के भी तीन रूप थे—

१. प्रथम प्राकृत अथवा पाली।

२. दूसरी प्राकृत अथवा शौरसेनी आदि।

३. तीसरी प्राकृत अपभ्रंश।

देश और काल के भेद से भाषाओं में जिस तरह भेद आता रहता है, उसे यहां समझा कर कहने की आवश्यकता नहीं है। भाषा-शास्त्र के सभी विकास-सिद्धान्त पूर्णरूप से हमारे देश की प्राचीन भाषाओं पर भी लागू हुए और इस देश में मुख्यतः एक ही भाषा, प्राचीनतम वैदिक भाषा, को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने के कारण विभिन्न देश कालों में विकसित होने वाली सभी भाषाओं, उपभाषाओं और बोलियों पर उस का गहरा प्रभाव स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। पुराने ज़माने में यातायात और सम्वादवहन के वर्तमान साधन प्राप्त नहीं थे। इतने लम्बे-चौड़े देश के विभिन्न भागों में रहने वाले नागरिकों के लिए एक दूसरे से मिल-जुल सकना, तब एक बहुत कष्टसाध्य कार्य था। इस पर भी सम्पूर्ण देश पर संस्कृत का जो प्रभुत्व स्थापित हो गया, वह एक आश्चर्य की बात है। इस संस्कृत भाषा के बाद के रूपान्तरों के सम्बन्ध में ऊपर कहा ही जा चुका है।

पुराने हिन्दी गद्य के बहुत कम ग्रन्थ आज उपलब्ध होते हैं। प्राचीन हिन्दी पद्य तो सुरक्षित रह सका, परन्तु गद्य उतना सुरक्षित नहीं रहा। यह भी सम्भव है कि उस युग में गद्य के लिखने का उतना अधिक चलन ही न हो।

वर्तमान खड़ी बोली की सब से पुरानी पहेली खुसरो की लिखी हुई है। पतंग के सम्बन्ध में यह पहेली है—

एक कहानी मैं कहूं सुन ले मेरे पूत।
विन पैरों वह उड़ गया वांध गले में सूत ॥

यह स्पष्ट है कि इस पहेली को उन दिनों की प्रचलित हिन्दी का प्रतिनिधि कदापि नहीं माना जा सकता। खुसरो का एक और पद है—

आदि कटे से सब को पाले
मध्य कटे से सब को घाले,
अन्त कटे से सब को मीठा
सो खुसरो मैं आंखो दीठा।

खुसरो का रचना-काल सन १३१४ ई० है। खुसरो तथा अन्य मुसल्मान कवियों और लेखकों पर उर्दू भाषा का प्रभाव था। और वे हिन्दी को भी अपनाए हुए थे। उसी का यह परिणाम हुआ कि उन्हें खडी बोली का प्रथम लेखक कहा जा सकता है। इसी तरह अशरफ़ का कहना है—

भभूत जोगियों का रंग लाया है
जो होनी हो सो हो जावे।

मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी 'सौदा' ने लिखा है—

मारे से वह जी उठे, विन मारे मर जाय।
विन पावों जग-जग फिरे हाथों-हाथ, बिकाय ॥

खड़ी बोली का सब से पहला गद्य हमे अकबर के समकालीन श्री गंग की लेखनी से मिलता है—

"इतना सुन के श्री पातसाहि जी श्री "अकबर साह जी आ

सेर सोना नरहरदास चारन को दिया। इन के डेढ़ सेर सोना हो गया। रास बाँचना पूरन भया। आम खास बरखास हुआ।"

जहांगीर के समकालीन कविवर जटमल को एक गद्य-लेखक के रूप मे भी माना जाता है, यद्यपि उन का कोई गद्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। 'गोरा बादल' की जो कथा जटमल कृत पाई जाती है, वह पद्य मे है। तथापि कहा जाता है कि उन की हिन्दी का रूप इस प्रकार है—"गुरू व सरस्वती को नमस्कार करता हूं।"

"उस गांव के लोग भी वहोत सुखी हैं। घर घर मे आनन्द होता है।"

उधर ब्रज भाषा में गद्य-रचना काफ़ी समय से जारी थी। सन १३४५ में बाबा गोरखनाथ ने लिखा—

"स्वामी तुम्ह तो सतगुरु, अम्हें तो सिष सबद तो एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मनि न करिबा रोस।"

स्वामी विट्ठल दास (सन् १५४४) की भाषा का रूप है :—

"सो श्री नंदगाम में रहतो हतो। सो ब्राह्मण खण्डन शास्त्र पढ़ो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सब को खंडन करतो, ऐसो वाको नेम हतो। याही तें सब लोगन ने वाको नाम खंडन पार्यो हतो।"

इन दोनो से पहले महाराज पृथ्वीराज (सन ११७६) के समय का लिखा गद्य भी आज उपलब्ध होता है, परन्तु उसे खड़ी बोली का गद्य नहीं कहा जा सकता। महाराज पृथ्वीराज के दो पत्रों की-

प्रतिलिपि इस प्रकार है—

श्रीहरी एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट वाई साहव श्री पृथुकुवर वाई का वाचे गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी वाँचजो अपन श्री दली भाई लंगरी राय जी आया है जो श्रीदली सुँ हजूर को वी रुका आयो है जो मारो भी पदारवा को सीखवी है नेदली जी पेद है जो कागद वाँचत चला आवजो थानेमा आगे जाणो पड़ेगा थाके वास्ते डाक वेठी है श्री हजूर वी हुक्म वेगीयो है थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारय अठ करोगा दली सुँ आआ पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आवसो स० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है, उस समय जो संवत् प्रचलित था वह विक्रम संवत् से ९० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है :—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेश जी को चित्तौर से वाई साहव श्री पृथाकुँवरि वाई का संवाद वाँचना। आगे भाई श्री लंगरीराय जी श्री दिल्ली से हजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली हैं। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज वाँचतेही चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी हैं। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर

की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगो के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सवेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिति चैत सुदी १३ संवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी वचनातु दा अमा अचारज ठाकुर रुसीकेप कस्थ थाने दली सु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना में थारा बंसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में जी प्रमाण परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको-दिल्ली से दायजे में लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्तःपुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

प्रारम्भिक गद्य के कतिपय अन्य उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं—

सन १५७३—गंगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया। (देखो पृष्ट ६)

प्रतिलिपि इस प्रकार है—

श्रीहरी एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट वाई साहव श्री पृथुकुवर वाई का वारया गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी बाँचजो अपन श्री दली सुँ भाई लंगरी राय जी आया है जो श्रीदली सुँ हजूर को वी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा को सीखवी है नेदली काका जी षेद है जो कागद वाँचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पड़ेगा थाके वास्ते डाक वेठी है श्री हजूर वी हुक्म वेगीयो है जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुं आआ पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आयसो सं० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम सं० १२३५ का पत्र है, उस समय जो संवत् प्रचलित था वह विक्रम संवत् से ६० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है.—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेश जी को चित्तौर से वाई साहव श्री पृथाकुँवरि वाई का संवाद वाँचना। आगे भाई श्री लंगरीराय जी श्री दिल्ली से हजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ हैं। सो कागज वाँचतेही चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक वैठाई गई है। श्री हजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर

की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगो के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सवेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिति चैत सुदी १३ संवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी वचनातु दा अमा अचारज ठाकुर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज में ओषद् थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना में थारा बंसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली मे जी प्रमाण परधान बरोबर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको-दिल्ली से दायजे में लाया। राज्य में तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्तःपुर में तुम्हारे वंशजों के सिवाय दूसरा नहीं जायगा, और दरबार में तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली में था।

प्रारम्भिक गद्य के कतिपय अन्य उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैं—

सन १५७३—गंगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आद्सेर सोना नरहरदास चारन को दिया। (देखो पृष्ठ ६)

सन् १५६२—गोस्वामी गोकुलनाथ जी

(चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता से) श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नगर में रहेतो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो वेटा हते और एक स्त्री हती।

सन् १६०४—नाभादास जी

अब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

सन् १६१३—गोस्वामी तुलसीदास

सं० १६६६ समये कुमार सुदी तेरसी वार शुभदीने लिपितं पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अंस विभाग पूर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

सन् १६१४—बनारसीदास जी

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग् दृष्टि।

सन् १६२४—जटमल

है वात कोसा चित्तौड गड़ के गोरा वादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हींदवी में वना कर तैयार करी है।......ये कथा सोल से अस्सी के साल मे फागुन सुदी पूनम के रोज वनाई।

सन् १७११—सूरति मिश्र (कविप्रिया की टीका से)

सीस फूल सुहाग अरु वेंदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर घरि आये हैं।

सन् १७३०—दास

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवन्त ह्वैजातु है। और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वैजाति है। उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू में प्रगट है।

२. भारतवर्ष की आधुनिक भाषाएं

डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय के मतानुसार भारतवर्ष की आर्य भाषाओं को पांच भागों मे बाटा जा सकता है—

क. उत्तरवर्गः—

१—सिंधी

२—लहंदा (मुल्तानी)

ख. पश्चिमी वर्ग— ३—पंजाबी

४—गुजराती

५—राजस्थानी

ग. मध्यदेशीय वर्ग—

६—पश्चिमी हिन्दी

घ. पूर्वी वर्ग—

७—पूर्वी हिन्दी

८—बिहारी

९—उड़िया

१०—बंगला

११—आसामी

ङ. दक्षिण वर्ग—

१२—मराठी

मि० ग्रियर्सन के अनुसार भारतीय आर्य भाषाओं के निम्नलिखित तीन वर्गीकरण किये जा सकते हैं—

क. मध्यदेशीय भाषा

१—हिन्दी

ख. अंतर्वर्ती अथवा मध्य भाषाएँ

(अ) मध्यदेशीय भाषा से विशेष घनिष्ठतावाली

२—पंजाबी

३—राजस्थानी

४—गुजराती

५—पूर्वी पहाड़ी, खसकुरा, अथवा नैपाली

६—केन्द्रस्थ पहाड़ी

७—पश्चिमी पहाड़ी

(आ) वहिरंग भाषाओं से अधिक संबद्ध

८—पूर्वी हिन्दी

ग. वहिरंग भाषाएँ—

(अ पश्चिमोत्तर वर्ग

९—लहँदा

१०—सिंधी

(आ) दक्षिणी वर्ग

११—मराठी

इ) पूर्वी वर्ग

१२—बिहारी

१३—उड़िया

१४—बगाली

१५—आसामी

(भीली गुजराती में और खानदेशी राजस्थानी मे अंतर्भूत हो जाती हैं।)

बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार इन भाषाओं का परिचय इस प्रकार है—

हिन्दी—भारतवर्ष के सिंधु, सिंध और सिंधी के ही दूसरे रूप हिंदु, हिंद और हिंदी माने जा सकते हैं, पर हमारी भाषा में आज ये भिन्न भिन्न शब्द माने जाते हैं। सिंधु एक नदी को सिंध एक देश को और सिंधी उस देश के निवासी को कहते हैं, तथा फारसी से आए हुए हिंदु, हिंद और हिंदी सर्वथा भिन्न अर्थ मे आते हैं। हिंदू से एक जाति, एक धर्म अथवा उस जाति या धर्म के मानने वाले व्यक्ति का बोध होता है। हिंद से पूरे देश भारत-वर्ष का अर्थ लिया जाता है और हिंदी एक भाषा का वाचक होता है।

प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से हिंदवी या हिंदी शब्द फ़ारसी भाषा का है और इसका अर्थ 'हिंद का' होता है, अतः यह फारसी ग्रंथो में हिंद देश के वासी और हिंद देश की भाषा दोनों अर्थों में आता था और आज भी आ सकता है। पंजाब का रहने वाला

दिहाती आज भी अपने को भारतवासी न कहकर हिंदी ही कहता है, पर हमें आज हिंदी के भाषा संबंधी अर्थ से ही विशेष प्रयोजन है। शब्दार्थ की दृष्टि से इस अर्थ मे भी हिंदी शब्द का प्रयोग हिंद या भारत में बोली जाने वाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिये हो सकता है, किंतु व्यवहार में हिंदी उस बड़े भूमिभाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम मे अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूरब मे भागलपुर, दक्षिण-पूरब मे रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस भूमिभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, बोलचाल आदि की भाषा हिंदी है। इस अर्थ में बिहारी (भोजपुरी, मगही और मैथिली), राजस्थानी (मारवाडी, मेवाती आदि), पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी), पहाडी आदि सभी हिन्दी की विभाषाएँ मानी जा सकती हैं। उसके बोलने वालों की सख्या लगभग १४ करोड़ है यह हिंदी का प्रचलित अर्थ है। भाषा-शास्त्रीय अर्थ इससे कुछ भिन्न और संकुचित होता है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस विशाल भूमिभाग अथवा हिंदी खण्ड मे तीन चार भाषाएँ मानी जाती हैं। राजस्थान की राजस्थानी, बिहार तथा बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बिहारी, उत्तर में पहाड़ों में पहाड़ी और अवध तथा छत्तीसगढ़ की 'पूर्वी हिन्दी आदि पृथक् भाषाएँ 'मानी जाती हैं। इस प्रकार

हिंदी केवल उस खण्ड की भाषा को कह सकते हैं जिसे प्राचीन काल में मध्य देश अथवा अन्तर्वेद कहते थे। अतः यदि आगरा को हिंदी का केन्द्र मानें तो उत्तर में हिमालय की तराई तक और दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक, पूर्व में कानपुर तक और पश्चिम मे दिल्ली के भी आगे तक हिन्दी का क्षेत्र माना माना जाता है। इसके पश्चिम मे पंजाबी और राजस्थानी बोली जाती हैं और पूर्व में पूर्वी हिन्दी। कुछ लोग हिन्दी के दो भेद मानते हैं—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिंदी। पर आधुनिक विद्वान् पश्चिमी हिन्दी को ही हिंदी कहना हिंदी शास्त्रीय समझते हैं। अतः भाषा-वैज्ञानिक विवेचन में पूर्वी हिन्दी भी 'हिंदी' से पृथक् भाषा मानी जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखें तो हिन्दी शौरसेनी की वंशज है और पूर्वी हिन्दी अर्ध-मागधी की। इसी से ग्रियर्सन, चैटर्जी आदि ने हिन्दी शब्द का पश्चिमी हिन्दी के ही अर्थ मे व्यवहार किया है और ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली बाँगरू और खड़ी बोली (हिन्दुस्तानी) को ही हिन्दी की विभाषा माना है—अवधी, छत्तीसगढ़ी आदि को नहीं। अभी हिन्दी लेखकों के अतिरिक्त अंगरेजी लेखक भी 'हिन्दी' शब्द का मनचाहा अर्थ किया करते हैं इससे भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी को हिन्दी शब्द के (१) मूल शब्दार्थ, (२) प्रचलित और साहित्यिक अर्थ, तथा (३) शास्त्रीय अर्थ

---

*पश्चिमी हिन्दी के बोलने वालों की संख्या केवल ४ करोड़, १२ लाख है।

दिहाती आज भी अपने को भारतवासी न कहकर हिंदी ही कहता है, पर हमें आज हिंदी के भाषा संबंधी अर्थ से ही विशेष प्रयोजन है। शब्दार्थ की दृष्टि से इस अर्थ में भी हिंदी शब्द का प्रयोग हिंद या भारत में बोली जाने वाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिये हो सकता है, किंतु व्यवहार में हिंदी उस बड़े भूमिभाग की भाषा मानी जाती है, जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूरब में भागलपुर, दक्षिण-पूरब में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस भूमिभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, बोलचाल आदि की भाषा हिंदी है। इस अर्थ में बिहारी (भोजपुरी, मगही और मैथिली), राजस्थानी (मारवाड़ी, मेवाती आदि), पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी), पहाड़ी आदि सभी हिन्दी की विभाषाएँ मानी जा सकती हैं। उसके बोलने वालों की सख्या लगभग १४ करोड़ है यह हिंदी का प्रचलित अर्थ है। भाषा-शास्त्रीय अर्थ इससे कुछ भिन्न और संकुचित होता है।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस विशाल भूमिभाग अथवा हिंदी खण्ड में तीन चार भाषाएँ मानी जाती हैं। राजस्थान की राजस्थानी, बिहार तथा बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी की बिहारी, उत्तर मे पहाड़ों में पहाड़ी और अवध तथा छत्तीसगढ़ की पूर्वी हिन्दी आदि पृथक् भाषाएँ मानी जाती हैं। इस प्रकार

हिंदी केवल उस खण्ड की भाषा को कह सकते हैं जिसे प्राचीन काल में मध्य देश अथवा अन्तर्वेद कहते थे। अतः यदि आगरा को हिंदी का केन्द्र मानें तो उत्तर में हिमालय की तराई तक और दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक, पूर्व में कानपुर तक और पश्चिम मे दिल्ली के भी आगे तक हिन्दी का क्षेत्र माना माना जाता है। इसके पश्चिम मे पंजाबी और राजस्थानी बोली जाती हैं और पूर्व में पूर्वी हिन्दी। कुछ लोग हिन्दी के दो भेद मानते हैं—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिंदी। पर आधुनिक विद्वान् पश्चिमी हिन्दी को ही हिंदी कहना हिंदी शास्त्रीय समझते हैं। अतः भाषा-वैज्ञानिक विवेचन मे पूर्वी हिन्दी भी 'हिंदी' से पृथक् भाषा मानी जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखे तो हिन्दी शौरसेनी की वंशज है और पूर्वी हिन्दी अर्ध-मागधी की। इसी से ग्रियर्सन, चैटर्जी आदि ने हिन्दी शब्द का पश्चिमी हिन्दी के ही अर्थ में व्यवहार किया है और ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली बाँगरू और खड़ी बोली (हिन्दुस्तानी) को ही हिन्दी की विभाषा माना है—अवधी, छत्तीसगढ़ी आदि को नहीं। अभी हिन्दी लेखकों के अतिरिक्त अगरेज़ी लेखक भी 'हिन्दी' शब्द का मनचाहा अर्थ किया करते हैं इससे भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी को हिन्दी शब्द के (१) मूल शब्दार्थ, (२) प्रचलित और साहित्यिक अर्थ, तथा (३) शास्त्रीय अर्थ

---

*पश्चिमी हिन्दी के बोलने वालों की संख्या केवल ४ करोड़, १२ लाख है।

को भली भाँति समझ लेना चाहिए। तीनों अर्थ ठीक हैं, पर भाषा-विज्ञान में वैज्ञानिक खोज से सिद्ध और शास्त्र-प्रयुक्त अर्थ ही लेना चाहिए।

खड़ी बोली—(१) हिन्दी (पश्चिमी हिंदी अथवा केन्द्रीय हिन्दी-आर्य भाषा) की प्रधान पाँच विभाषाएं हैं—खड़ी बोली बाँगरू, व्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली। आज खड़ी बोली राष्ट्र की भाषा है—साहित्य और व्यवहार सब में उसी का बोल-बाला है, इसी से वह अनेक नामों और रूपों में भी देख पड़ती है। प्राय लोग व्रजभाषा, अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं से भेद दिखाने के लिये आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को 'खडी बोली' कहते हैं। यह इसका सामान्य अर्थ है, पर इसका मूल अर्थ लें तो खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं जो रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला तथा कलसिया और पटियाला रियासत के पूर्वी भागो मे बोली जाती है। इसमे यद्यपि फारसी-अरबी के शब्दो का व्यवहार अधिक होता है पर वे शब्द तद्भव अथवा अर्धतत्सम होते हैं। इसके बोलने वालों की संख्या लग-जग ५३ लाख है। इसकी उत्पत्ति के विषय में अब यह माना जाने लगा है कि इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। उस पर कुछ पंजाबी का प्रभाव देख पडता है।

उच्च हिन्दी—यह खडी बोली ही आजकल की हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीनों का मूलाधार है। खड़ी बोली अपने शुद्ध

रूप में केवल एक बोली है पर जब वह साहित्यिक रूप धारण करती है तब कभी वह 'हिन्दी' कही जाती है और कभी 'उर्दू'। जिस भाषा में संस्कृत के तत्सम और अर्ध-तत्सम शब्दों का विशेष व्यवहार होता है वह हिन्दी (अथवा योरोपीय विद्वानों की उच्च हिन्दी) कही जाती है। इसी हिन्दी मे वर्तमान युग का साहित्य निर्मित हो रहा है। पढ़े-लिखे हिन्दू इसी का व्यवहार करते हैं। यही खड़ी बोली का साहित्यिक रूप हिन्दी के नाम से राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बिठाया जा रहा है।

उर्दू—जब वही खडी बोली फारसी-अरबी के तत्सम और अर्ध-तत्सम शब्दों को इतना अपना लेती है कि कभी-कभी उसकी वाक्य-रचना पर भी कुछ विदेशी रंग चढ जाता है, तब उसे उर्दू कहते हैं। यही उर्दू भारत के मुसलमानों की साहित्यिक भाषा है। इस उर्दू के भी दो रूप देखे जाते हैं। एक दिल्ली लखनऊ आदि की तत्सम-बहुला कठिन उर्दू और दूसरी हैदराबाद की सरल दक्खिनी उर्दू (अथवा हिन्दुस्तानी)। इस प्रकार भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि में हिन्दी और उर्दू खड़ी बोली के दो साहित्यिक रूप मात्र हैं। एक का ढाचा भारतीय परम्परागत प्राप्त है और दूसरी को फारसी का आधार बनाकर विकसित किया जा रहा है।

हिन्दुस्तानी—खड़ी बोली का एक रूप और होता है जिसे न तो शुद्ध साहित्यिक कह सकते हैं और न ठेठ बोलचाल की बोली ही कह सकते हैं। वह है हिन्दुस्तानी—विशाल हिन्दी

प्रान्त के लोगों की परिमार्जित बोली। इसमें तत्सम शब्दों
व्यवहार कम होता है, पर नित्य व्यवहार के, शब्द देशी
सभी, काम में आते हैं। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी के
अंगरेज़ी ने भी हिन्दुस्तानी में स्थान पा लिया है। इसी से
विद्वान् ने लिखा है कि "पुरानी हिन्दी, उर्दू और अंगरेज़ी
मिश्रण से जो एक नई जबान आप से आप बन गई है
हिन्दुस्तानी के नाम से मशहूर है।" यह उद्धरण भी
का अच्छा नमूना है। यह भाषा अभी तक बोल-चाल की
बोली ही है! इसमें कोई साहित्य नहीं है। किस्से, गजल,
आदि की भाषा को यदि चाहे तो, हिन्दुस्तानी का ही एक रूप
कह सकते हैं। आजकल कुछ लोग हिन्दुस्तानी को
साहित्य की भाषा बनाने का यत्न कर रहे हैं, पर
अवस्था में वह राष्ट्रीय बोली ही कही जा सकती है।
उत्पत्ति का कारण भी परस्पर विनिमय की इच्छा ही है। जिस
प्रकार उर्दू के रूप मे खड़ी बोली ने मुसलमानों की माँग पूरी
की है उसी प्रकार अंगरेजी शासन और शिक्षा की आवश्यक-
ताओं की पूर्ति करने के लिये हिन्दुस्तानी चेष्टा कर रही है।
वास्तव मे 'हिन्दुस्तानी' नाम के जन्मदाता अंगरेज़ आफिसर
हैं। वे जिस साधारण बोली से साधारण लोगो से—साधारण
पढ़े और बेपढ़े दोनों ढंग के लोगों से—बातचीत और
हार करते थे उसे हिंदुस्तानी कहने लगे। जब हिंदी और उर्दू
साहित्य-सेवा में विशेष रूप से लग गईं तब जो बोली जनता में

बन रही है उसे हिंदुस्तानी कहा जाने लगा है। हिन्दुस्तानी को चाहे हम हिंदी का, चाहे उर्दू के बोल-चाल का रूप कह सकते हैं। अतः हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तीनों ही खड़ी बोली के रूपान्तर-मात्र हैं। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शास्त्रों में खड़ी बोली का अधिक प्रयाग एक प्रांतीय बोली के अर्थ में ही होता है।

(२) बाँगरू—हिंदी की दूसरी विभाषा बाँगरू बोली है। यह बाँगर अर्थात् पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग की बोली है। देहली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा और झींद आदि की ग्रामीण बोली यही बाँगरू है। यह पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनों की खिचड़ी है। बाँगरू बोलने वालों की संख्या बाईस लाख है। बाँगरू बोली की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। पानीपत और कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान इसी बोली की सीमा के अन्दर पड़ते हैं।

(३) ब्रजभाषा—ब्रजमंडल में ब्रजभाषा बोली जाती है। इसका विशुद्ध रूप आज भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोला जाता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ७९ लाख है। ब्रजभाषा में हिंदी का इतना बड़ा और सुंदर साहित्य लिखा गया है कि उसे बोली अथवा विभाषा न कह कर भाषा का नाम मिल गया था, पर आज तो वह हिंदी की एक विभाषा मात्र कही जा सकती है। आज भी अनेक कवि पुरानी अमर ब्रजभाषा में काव्य लिखते हैं।

(४) कन्नौजी—गंगा के मध्य दोआब की बोली कन्नौजी है। इसमें भी अच्छा साहित्य मिलता है पर वह भी ब्रजभाषा

प्रान्त के लोगों की परिमार्जित बोली। इसमें तत्सम शब्दों
व्यवहार कम होता है, पर नित्य व्यवहार के, शब्द देशी .
सभी, काम में आते हैं। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी के . .
अंगरेजी ने भी हिन्दुस्तानी में स्थान पा लिया है । इसी से .
विद्वान् ने लिखा है कि "पुरानी हिन्दी, उर्दू और अंगरेजी
मिश्रण से जो एक नई ज़बान आप से आप बन गई है
हिन्दुस्तानी के नाम से मशहूर है।" यह उद्धरण भी हिन्दुस्तानी
का अच्छा नमूना है। यह भाषा अभी तक बोल-चाल की
बोली ही है! इसमें कोई साहित्य नहीं है। किस्से, गजल,
आदि की भाषा को यदि चाहें तो, हिन्दुस्तानी का ही एक रूप
कह सकते हैं। आजकल कुछ लोग हिन्दुस्तानी को
साहित्य की भाषा बनाने का यत्न कर रहे हैं, पर
अवस्था में यह राष्ट्रीय बोली ही कही जा सकती है।
उत्पत्ति का कारण भी परस्पर विनिमय की इच्छा ही है।
प्रकार उर्दू के रूप में खड़ी बोली ने मुसलमानों की माँग पूरी
की है उसी प्रकार अंगरेजी शासन और शिक्षा की आवश्यक-
ताओं की पूर्ति करने के लिये हिन्दुस्तानी चेष्टा कर रही है।
वास्तव में 'हिन्दुस्तानी' नाम के जन्मदाता अंगरेज
हैं। वे जिस साधारण बोली से साधारण लोगों से—साधारण
पढ़े और अनपढ़े दोनों ढंग के लोगों से—बातचीत और व्यव-
हार करते थे उसे हिंदुस्तानी कहने लगे। जब हिंदी और उर्दू
साहित्य-सेवा में विशेष रूप से लग गई तब जो बोली जनता में

चल रही है उसे हिंदुस्तानी कहा जाने लगा है। हिन्दुस्तानी को चाहे हम हिंदी का, चाहे उर्दू के बोल-चाल का रूप कह सकते हैं। अतः हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तीनों ही खड़ी बोली के रूपान्तर-मात्र हैं। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शास्त्रों में खड़ी बोली का अधिक प्रयाग एक प्रांतीय बोली के अर्थ में ही होता है।

(२) बाँगरू—हिंदी की दूसरी विभाषा बाँगरू बोली है। यह बाँगर अर्थात् पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग की बोली है। देहली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा और जींद आदि की ग्रामीण बोली यही बाँगरू है। यह पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनों की खिचड़ी है। बाँगरू बोलने वालों की संख्या बाईस लाख है। बाँगरू बोली की पश्चिमी सीमा पर सरस्वती नदी बहती है। पानीपत और कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान इसी बोली की सीमा के अन्दर पड़ते हैं।

(३) ब्रजभाषा—ब्रजमंडल में ब्रजभाषा बोली जाती है। इसका विशुद्ध रूप आज भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोला जाता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ७९ लाख है। ब्रजभाषा में हिंदी का इतना बड़ा और सुंदर साहित्य लिखा गया है कि उसे बोली अथवा विभाषा न कह कर भाषा का नाम मिल गया था, पर आज तो वह हिंदी की एक विभाषा मात्र कही जा सकती है। आज भी अनेक कवि पुरानी अमर ब्रजभाषा में काव्य लिखते हैं।

(४) कन्नौजी—गंगा के मध्य दोआब की बोली कन्नौजी है। इसमें भी अच्छा साहित्य मिलता है पर वह भी ब्रजभाषा

का ही साहित्य माना जाता है, क्योंकि साहित्यिक कन्नौजी और ब्रज में कोई विशेष अन्तर नहीं लक्षित होता।

(५) बुंदेली—यह बुंदेलखण्ड की भाषा है और ब्रजभाषा के क्षेत्र के दक्षिण में बोली जाती है। शुद्ध रूप में यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। बुन्देली के बोलने वाले लगभग ६९ लाख हैं। मध्यकाल में बुन्देलखण्ड में अच्छे कवि हुए हैं, पर उनकी भाषा ब्रज ही रही है। उनकी ब्रजभाषा पर कभी २ बुन्देली की अच्छी छाप देख पड़ती है।

मध्यवर्ती भाषाएँ—'मध्यवर्ती' कहने का यही अभिप्राय है कि ये भाषाएँ मध्यदेशी भाषा और बहिरंग भाषाओं के बीच की कड़ी हैं, अतः उनमें दोनों के लक्षण मिलते हैं। मध्यदेश के पश्चिम की भाषाओं में मध्यदेशी लक्षण अधिक मिलते हैं पर उसके पूर्व की 'पूर्वी हिंदी' में बहिरंग वर्ग के इतने अधिक लक्षण मिलते हैं कि उसे बहिरंग वर्ग की ही भाषा कहा जा सकता है।

जैसा पीछे तीसरे ढंग के वर्गीकरण में स्पष्ट हो गया है, ये मध्यवर्ती भाषाएँ सात हैं—पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पूर्वी पहाड़ी, केन्द्रीय पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी और पूर्वी हिंदी। ये सातों भाषायें हिन्दी को—मध्यदेश की भाषा को—घेरे हुए हैं। साहित्यिक और राष्ट्रीय दृष्टि से ये सब हिंदी की [illegible] (अथवा उपभाषाएँ) मानी जा सकती हैं पर भाषाशास्त्र की [illegible]

से वे स्वतन्त्र भाषाएँ मानी जाती हैं। इनमें से पहली छः में मध्य-देशी लक्षण अधिक मिलते हैं पर पूर्वी हिंदी में बहिरंग लक्षण ही प्रधान हैं।

पंजाबी—पूरे पंजाब प्रान्त की भाषा को 'पंजाबी' कह सकते हैं। इसी से कई लेखक पश्चिमी पंजाबी और पूर्वी पंजाबी के दो भेद करते हैं पर भाषा-शास्त्री पूर्वी पंजाबी को पंजाबी कहते हैं, अतः हम भी पंजाबी का इसी अर्थ में व्यवहार करेंगे। पश्चिमी पंजाबी को लँहदा कहते हैं। अमृतसर के आस पास की भाषा शुद्ध पंजाबी मानी जाती है। यद्यपि स्थानीय बोलियों में भेद मिलता है पर सच्ची विभाषा डोग्री ही है। जम्मू रियासत और काँगडा जिले में डोग्री बोली जाती है। इसकी लिपि तक्करी अथवा टकरी है। टक्क जाति से इसका सम्बन्ध जोडा जाता है। पंजाबी में थोड़ा साहित्य भी है। पंजाबी ही एक ऐसी मध्य-देश से सम्बद्ध भाषा है जिसमें संस्कृत और फ़ारसी शब्दों की भरती नहीं है। इस भाषा में वैदिक-संस्कृत-सुलभ रस और सुंदर पुरुषत्व देख पडता है। इस भाषा में इसके बोलने वाले बलिष्ठ और कठोर किसानों की कठोरता और सादगी मिलती है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि पंजाबी ही एक ऐसी आधुनिक हिंदी—आर्य भाषा है जिसमें वैदिक अथवा तिब्बत-चीनी भाषा के समान स्वर पाए जाते हैं।

राजस्थानी और गुजराती—पंजाबी के दक्षिण में राजस्थानी है। जिस प्रकार हिंदी का उत्तर-पश्चिम की ओर फैला हुआ रूप पंजाबी है, उसी प्रकार हिंदी का दक्षिण-पश्चिम विस्तार राजस्थानी है। इसी विस्तार का अन्तिम भाग गुजराती है।

लहँदा—यह पश्चिम पंजाब की भाषा है, इसी से कुछ लोग इसे पश्चिमी पंजाबी भी कहा करते हैं। यह जटकी, अच्छी हिंदकी, डिलाही आदि नामों से भी पुकारी जाती है। कुछ विद्वान् इसे लहँदी भी कहते हैं पर लहँदा तो संज्ञा है। अतः उसका स्त्रीलिंग नहीं हो सकता। लहँदा एक नया नाम ही चल पड़ा है; अब उसमें अर्थ के द्योतन की शक्ति आ गई है।

लहँदा की चार विभाषाएँ हैं—(१) एक केन्द्रीय लहँदा जो नमक की पहाड़ी के दक्षिण-प्रदेश में बोली जाती है और जो टकसाली मानी जाती है, (२) दूसरी दक्षिणी अथवा मुल्तानी जो मुल्तान के आस-पास बोली जाती है, (३) तीसरी उत्तर-पूर्वी अथवा पोठोवारी और (४) चौथी उत्तर-पश्चिमी अर्थात् धन्नी। यह उत्तर में हजारा जिले तक पाई जाती है। लहँदा मे साधारण गीतों के अतिरिक्त कोई साहित्य नहीं है। इसकी अपनी लिपि लंडा है।

सिन्धी—यह दूसरी बहिरंग भाषा है, और सिंध नदी के दोनों तटों पर बसे हुए सिंध देश की बोली है। इसमें पाँच विभाषाएँ हैं—विचोली, सिरैकी, लारी, थरेली और कच्छी। विचोली मध्य सिंध की टकसाली भाषा है। सिंधी के उत्तर में लहँदा, दक्षिण में गुजराती और पूर्व मे राजस्थानी है। सिंधी का भी साहित्य छोटा सा है। इसकी लिपि लंडा है पर गुरुमुखी और नागरी का भी प्रायः व्यवहार होता है।

मराठी—कच्छी बोली के दक्षिण में गुजराती है। यद्यपि उसका क्षेत्र पहले बहिरंग भाषा का क्षेत्र रह चुका है पर गुजराती मध्यवर्ती भाषा है। अतः यहाँ बहिरंग भाषा की

शृंखला टूट सी गई है। इसके बाद गुजराती के दक्षिण मे मराठी आती है। यही दक्षिणी बहिरंग भाषा है। यह पश्चिमी घाट और अरब समुद्र के मध्य की भाषा है। पूना की भाषा ही टकसाली मानी जाती है। पर मराठी बरार मे से होते हुए बस्तर तक बोली जाती है। इसके दक्षिण मे द्रविड़ भाषाएँ बोली जाती हैं। पूर्व मे मराठी अपनी पड़ोसिन छत्तीसगढ़ी से मिलती है।

मराठी की तीन विभाषाएँ हैं। पूना के आसपास की टकसाली बोली देशी मराठी कहलाती है। यही थोड़े भेद से उत्तर कोंकण में बोली जाती है, इससे इसे कोंकणी भी कहते हैं। पर कोंकणी एक दूसरी मराठी बोली का नाम है जो दक्षिणी कोंकण में बोली जाती है। पारिभाषिक अर्थ मे दक्षिण कोंकणी ही कोंकणी मानी जाती जाती है। मराठी की विभाषा बरार की बरारी है। हल्बी, मराठी और द्रविड़ की खिचड़ी बोली है जो बस्तर में बोली है।

मराठी भाषा मे तद्धितांत, नामधातु आदि शब्दो का व्यवहार विशेष रूप से होता है। इसमे वैदिक स्वर के भी कुछ चिह्न मिलते हैं।

बिहारी—पूर्व की ओर आने पर सब से पहिली बहिरंग भाषा बिहारी मिलती है। बिहारी केवल बिहार मे ही नहीं, संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर-बनारस कमिश्नरियों से लेकर पूरे बिहार प्रांत में तथा छोटा नागपुर में भी बोली जाती है यह पूर्वी हिंदी के समान हिंदी की चचेरी बहिन मानी जा सकती है। इसकी तीन विभाषाएँ—(१) मैथिली, जो गंगा के उत्तर दरभंगा के आसपास बोली जाती है। (२) मगही,

लहँदा—यह पश्चिम पंजाब की भाषा है, इसी से कुछ लोग इसे पश्चिमी पंजाबी भी कहा करते हैं। यह जटकी, अच्छी हिंदकी, डिलाही आदि नामों से भी पुकारी जाती है। कुछ विद्वान् इसे लहँदी भी कहते हैं पर लहँदा तो संज्ञा है। अतः उसका स्त्रीलिंग नहीं हो सकता। लहँदा एक नया नाम ही चल पड़ा है, अब उसमे अर्थ के द्योतन की शक्ति आ गई है।

लहँदा की चार विभाषाएँ हैं—(१) एक केन्द्रीय लहँदा जो नमक की पहाडी के दक्षिण-प्रदेश मे बोली जाती है और जो टकसाली मानी जाती है, (२) दूसरी दक्षिणी अथवा मुल्तानी जो मुल्तान के आस-पास बोली जाती है, (३) तीसरी उत्तर-पूर्वी अथवा पोठोवारी और (४) चौथी उत्तर-पश्चिमी अर्थात् धन्नी। यह उत्तर में हजारा जिले तक पाई जाती है। लहँदा मे साधारण गीतों के अतिरिक्त कोई साहित्य नहीं है। इसकी अपनी लिपि लंडा है।

सिन्धी—यह दूसरी बहिरंग भाषा है, और सिंध नदी के दोनों तटों पर बसे हुए सिंध देश की बोली है। इसमें पाँच विभाषाएँ हैं—बिचोली, सिरैकी, लारी, थरेली और कच्छी। बिचोली मध्य सिंध की टकसाली भाषा है। सिंधी के उत्तर में लहँदा, दक्षिण में गुजराती और पूर्व मे राजस्थानी है। सिंधी का भी साहित्य छोटा सा है। इसकी लिपि लंडा है पर गुरुमुखी और नागरी का भी प्रायः व्यवहार होता है।

मराठी—कच्छी बोली के दक्षिण में गुजराती है। यद्यपि इसका क्षेत्र पहले बहिरंग भाषा का क्षेत्र रह चुका है पर गुजराती मध्यवर्ती भाषा है। अतः यहाँ बहिरंग भाषा की

श्रृंखला टूट सी गई है। इसके बाद गुजराती के दक्षिण मे मराठी आती है। यही दक्षिणी बहिरंग भाषा है। यह पश्चिमी घाट और अरब समुद्र के मध्य की भाषा है। पूना की भाषा ही टकसाली मानी जाती है। पर मराठी बरार मे से होते हुए बस्तर तक बोली जाती है। इसके दक्षिण मे द्रविड़ भाषाएँ बोली जाती हैं। पूर्व में मराठी अपनी पडोसिन छत्तीसगढ़ी से मिलती है।

मराठी की तीन विभाषाएँ हैं। पूना के आसपास की टकसाली बोली देशी मराठी कहलाती है। यही थोड़े भेद से उत्तर कोंकण मे बोली जाती है, इससे इसे कोंकणी भी कहते हैं। पर कोंकणी एक दूसरी मराठी बोली का नाम है जो दक्षिणी कोंकण में बोली जाती है। पारिभाषिक अर्थ मे दक्षिण कोंकणी ही कोंकणी मानी जाती जाती है। मराठी की विभाषा बरार की बरारी है। हल्बी, मराठी और द्रविड़ की खिचड़ी बोली है जो बस्तर में बोली है।

मराठी भाषा में तद्धितांत, नामधातु आदि शब्दो का व्यवहार विशेष रूप से होता है। इसमें वैदिक स्वर के भी कुछ चिह्न मिलते हैं।

बिहारी—पूर्व की ओर आने पर सब से पहिली बहिरंग भाषा बिहारी मिलती है। बिहारी केवल बिहार मे ही नहीं, संयुक्त प्रांत के पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर-बनारस कमिश्नरियों से लेकर पूरे बिहार प्रांत मे तथा छोटा नागपुर में भी बोली जाती है यह पूर्वी हिंदी के समान हिंदी की चचेरी बहिन मानी जा सकती है। इसकी तीन विभाषाएँ—(१) मैथिली, जो गंगा के उत्तर दरभंगा के आसपास बोली जाती है। (२) मगही,

जिसके केन्द्र पटना और गया हैं। (३) भोजपुरी, जो गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों से लेकर बिहार प्रांत के आरा (शाहाबाद), चम्पारन और सारन जिलों में बोली जाती है। यह भोजपुरी अपने वर्ग की ही मैथिली—मगह—से इतनी भिन्न होती है कि चैटर्जी भोजपुरी को एक पृथक् वर्ग में ही रखना उचित समझते हैं।

बिहार में तीन लिपियाँ प्रचलित हैं। छपाई नागरी लिपि में होती है। साधारण व्यवहार में कैथी चलती है और कुछ मैथिलों में मैथिली लिपि चलती है।

उड़िया—औड्री, उत्कली अथवा उड़िया उड़ीसा की भाषा है। इसमें कोई विभाषा नहीं है। इसकी एक खिचड़ी बोली है जिसे भत्री कहते हैं। भत्री मे उड़िया, मराठी और द्रविड़ तीनों आकर मिल गई हैं। उड़िया का साहित्य अच्छा बड़ा है।

बंगाली—बंगाल की भाषा बंगाली प्रसिद्ध साहित्य-सम्पन्न भाषाओं में से एक है। इसकी तीन विभाषाएँ हैं। हुगली के आस पास की पश्चिमी बोली टकसाली मानी जाती है। बँगला लिपि देवनागरी का ही एक रूपांतर है।

आसामी—बहिरंग समुदाय की अंतिम भाषा है। यह आसाम की भाषा है। वहां के लोग उसे असामिया कहते हैं। आसामी यद्यपि बंगला से बहुत कुछ मिलती है तो भी व्याकरण और उच्चारण में पर्याप्त भेद पाया जाता है। यह भी एक प्रकार की बँगला लिपि में ही लिखी जाती है। आसामी की कोई सच्ची विभाषा नहीं है।

३—ऐतिहासिक विकास

पूर्व हिंदी—यह कहा जा सकता है कि सब से पूर्व नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अपभ्रंश भाषा विकसित हो कर पूर्व-हिंदी के रूप में परिणत हो गई। दसवीं, ग्यारहवीं सदी में हेमचन्द्र ने जो कविताएं लिखीं, उन्हें पूर्व-हिंदी की कविता कहा जा सकता है। सिरहपा का समय ६वीं सदी माना जाता है। उस की भाषा पूर्व-हिंदी का प्रारम्भिक रूप है। चन्द्रबरदाई ने भी पूर्व-हिंदी में काव्य रचना की। पूर्व-हिंदी का काल नौवी सदी से १४वी सदी के प्रारम्भ तक गिना जा सकता है। इस काल मे मुख्यतः वीर काव्य की ही रचना हुई। इस काल की रचनाओं की भाषा दो भागों में बांटी जा सकती है—

१ राजस्थानी ढंग जिसे डिंगल भी कहा जाता है।

२ पुरानी ब्रजभाषा जिसे पिंगल भी कहा जाता है।

डिंगल ग्रन्थों की अपेक्षा पिंगल ग्रन्थों मे प्राचीन शैली और अपभ्रंश की अधिकता है। सम्भवतः इसे तब अधिक सम्मान-सूचक समझा जाता था।

मध्य हिंदी—हिंदी का मध्य काल चौदवीं सदी के प्रथमचरण (सन् १३१८) से प्रारम्भ होकर उन्नीसवीं सदी के मध्य (सन् १८५०) तक माना जाता है। इस मध्य काल के भी दो भाग किये जा सकते हैं—

१ पूर्व मध्यकाल (सन् १३१८ से १६५०)

२ उत्तरी मध्यकाल (सन् १६५१ से १८५०)

इस मध्यकाल मे प्रारम्भ में हिन्दी के सभी रूप विकसित होकर पृथक्-पृथक् सत्ता धारण कर गए। इनमे तीन मुख्य थे—ब्रज, अवधी और खड़ी बोली। इन मे से ब्रज और अवधी साहित्यिक भाषाएं बनीं, अतः उन्हें विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। परन्तु यह बात एकदम नहीं हो गई। यह मध्यकाल सन्त कवियो का काल है, उनमें से अनेक ने भाषा की शुद्धता की ज़रा भी परवाह नहीं की। कबीर उन में प्रमुख हैं। कबीर बहुत अधिक लोकप्रिय हुए, परन्तु भाषा की शुद्धता की उन्होने एकान्त उपेक्षा की। इस कारण ब्रज और अवधी के लेखकों को एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पडा। परन्तु इन साहित्यिक भाषाओ के सौभाग्य से सूर और तुलसीदास का जन्म हुआ और इन्होंने ब्रज भाषा को बहुत समुन्नत रूप दे दिया। यद्यपि अपभ्रंश और कतिपय अन्य भाषाओं की छाप उन की रचनाओं पर भी देखी जा सकती है। यहां तक कि भिखारीदास ने गोस्वामी तुलसीदास की भाषा के सम्बन्ध में लिखा—

तुलसी गंग दुवौ भये सुकविन के सरदार।
जिन की कविता मे मिली भाषा विविध प्रकार॥

ब्रजभाषा का पूर्ण विकास तो शृंगार रस के कवियों ने ही किया। बिहारी, देव आदि कवियो की भाषा बहुत मंजी हुई, विकसित और परिष्कृत है। बिहारी के समय से ही उत्तर मध्यकाल का प्रारम्भ होता है। इस काल को रीतिकाल भी कहा जाता है।

आधुनिक युग—उत्तर मध्यकाल में वर्तमान खड़ी बोली का भी काफ़ी विकास हुआ और उस मे साहित्यिक रचनाए भा

की जाने लगीं। श्री सर्वश्री गोकुलनाथ, लल्लूलाल, मक्खनलाल आदि इसी काल में हुए। उसके बाद सन् १८५० से हिन्दी मे आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है। इस काल का प्रारम्भ स्वामी दयानन्द के साथ हुआ और इस काल पर सब से गहरी छाप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पडी। सन् १८५० से लेकर १६१० तक उत्तर-कालीन हिन्दी का युग है। पिछले महायुद्ध के प्रारम्भ के आसपास श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मुंशी प्रेमचन्द से वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है।

आधुनिक युग में हिन्दी-गद्य का विशेष विकास हुआ। अपने इस प्रथम भाग में हम मुख्यतः उन्नीसवीं शताब्दी में लिखे गए ग्रन्थो मे से ही गद्यांश उद्धृत कर रहे हैं।

बाबू श्यामसुन्दर दास के कथनानुसार—"आधुनिक युग की सब से बड़ी विशेषता है खडी बोली मे गद्य का विकास। इस भाषा का इतिहास बड़ा ही रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर के प्रदेश मे बोली जाती है और पहले वहीं तक इस के प्रचार की सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। पर जब मुसलमान इस देश मे बस गए और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया, तब दिल्ली में मुसलमानो शासन का केन्द्र होने के कारण विशेष रूप से उन्होंने उसी प्रदेश की भाषा खड़ी बोली को अपनाया। यह कार्य एक दिन में नहीं हुआ। अरब, फारस और तुर्किस्तान से आए हुए सिपाहियों को यहाँ वालों से बातचीत करने मे पहले बडी कठिनता होती थी। न ये उनकी अरबी, फारसी समझते थे और न वे इनकी हिंदवी। पर बिना ०५

काम चलना असम्भव था, अत दोनों ने दोनों के कुछ-कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदान का मार्ग निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमें दाल चावल सब खड़ी बोली के थे, सिर्फ नमक आगंतुकों ने मिलाया। आरम्भ में तो वह निरी बाजारू बोली थी, धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहाँ पहले शुद्ध, अशुद्ध बोलने वालों से सही गलत बोलवाने के लिये शाहजहाँ को "शुद्धो सहीह इत्युक्तो ह्यशुद्धो गलतः स्मृत." का प्रचार करना पड़ा था, वहाँ अब इस की कृपा से लोगों के मुँह से शुद्ध-अशुद्ध न निकल कर सही गलत निकला करता है। आजकल जैसे अँगरेजी पढ़े-लिखे भी अपने नौकर से एक ग्लास पानी न माँगकर एक गिलास ही माँगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्य के अनुरोध से वे लोग अपने ओजबेक का उजबक, कुनको का कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे, एवं ये लोग बेरहमन सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिंदी, बुँदेलखँडी हिंदी, पंडिताऊ हिंदी और बाबू इँगलिश की तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे भेदक उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बन कर उसी प्रकार उस भाषा के लिये प्रयुक्त होने लगा, जिस तरह संस्कृत वाक् के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सब से बड़ा साधन मान कर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ जहाँ फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इस में केवल फारसी तथा अरबी के

शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उस के व्याकरण पर भी फारसी अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाया। इस अवस्था मे इसके दो रूप हो गए, एक तो हिंदी कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण कर के, पर व्याकरण का संगठन हिंदी के ही अनुसार रख कर, अँगरेजों ने इसका एक तीसरा रूप हिंदुस्तानी बनाया। अतएव इस समय खड़ी बोली के तीन रूप वर्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी जो हिंदुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिंदुओं में है, (२) उर्दू जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों मे है और जो उन के साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा हिंदुओं की घर के बाहर की बोलचाल की भाषा है, और (३) हिन्दुस्तानी जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका बहुत से लोग बोलचाल मे व्यवहार करते हैं। इस में अभी साहित्य की रचना बहुत कम हुई है। इस तीसरे रूप के मूल में राजनीतिक कारण हैं।"

"भ्रमवश हिन्दी में खड़ी बोली गद्य के जन्मदाता लल्लूलाल जी माने जाते हैं। यह भ्रम उन अँगरेजों के कारण फैला है जो अपने आने के पहले गद्य का अस्तित्व हिंदी में स्वीकार ही नहीं करते। परन्तु यह बात असत्य है। अकबर बादशाह के यहाँ सवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। उस ने "चंद छंद बरनन की महिमा" खडी बोली के गद्य में लिखी है। उस के पहले का कोई प्रमाणिक गद्य लेख न मिलने के कारण खड़ी बोली का प्रथम गद्यलेख मानना चाहिये। इसी

सदल मिश्र की भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें सदासुख को अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने अधिक साधु भाषा का व्यवहार भी किया।

"छापेखानों के फैल जाने पर हिंदी की पुस्तकें शीघ्रता से बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अँगरेजी स्कूल भी खुले और उन में हिंदी उर्दू का झगड़ा किया गया। मुसलमानों की ओर से सरकार को यह समझाया गया कि उर्दू को छोड़ कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांत में है ही नहीं। कचहरियों में उर्दू का प्रयोग होता है, मदरसों में भी होना चाहिए। परन्तु सत्य का तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपि की सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अंगरेजों की दृष्टि में आ चुका था। लिपि के विचार से उर्दू की क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखों के सामने आती जा रही थी। परन्तु नीति के लिये सब कुछ किया जा सकता है। अंगरेज समझकर भी नहीं समझना चाहते थे। इसी समय युक्त प्रांत में स्कूलों के इंस्पेक्टर हिंदी के पक्षपाती काशी के राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गए। राजा साहब के प्रयत्न से देवनागरी लिपि स्वीकार की गई और स्कूलों में हिंदी को स्थान मिला। राजा साहब ने अपने अनेक परिचित मित्रों से पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं। उन की लिखी हुई कुछ पुस्तकों में अच्छी हिंदी मिलती है, पर अधिकांश में उर्दू प्रधान भाषा ही उन्हों ने लिखी। ऐसा उन्हों ने समय और नीति को देखते हुए अच्छा ही किया। इसी समय के लगभग हिंदी में संस्कृत के [illegible] नाटक आदि का अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मणसिंह हु[illegible]

की कृतियों में सर्वत्र शुद्ध संस्कृत-विशिष्ट खड़ी बोली प्रयुक्त हुई है। दोनों राजा साहबों ने अपने अपने ढंग से हिंदी का महान उपकार किया था, इस में कुछ भी संदेह नहीं।"

"भारतेंदु हरिश्चंद्र के कार्य-क्षेत्र मे आते ही हिंदी में समुन्नति का युग आया। अब तक तो खड़ी-बोली-गद्य का विकास होता रहा और पाठशालाओं के उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्य के अनेक अंगों पर ध्यान दिया गया और उन में पुस्तक रचना का प्रयत्न किया गया। भारतेंदु ने अपने बंगाल भ्रमण के उपरांत बंगला के नाटकों का अनुवाद किया और मौलिक नाटकों की रचना की। कविता में देशप्रेम के भावों का प्रादुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। हरिश्चंद्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका भारतेंदु जी के पत्र थे। छोटे छोटे निबंध भी लिखे जाने लगे। उन के लिखने वालो में हरिश्चंद्र के अतिरिक्त पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे। नाटककारों में श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदास का नाम उल्लेखनीय है। "परीक्षागुरू" नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओ में स्वामी दयानंद के उपरांत सबसे प्रसिद्ध पंडित भीमसेन शर्मा हुए, जिन्हो ने आर्य समाज का अच्छा साहित्य तैयार किया। पंडित अंबिकादत्त व्यास भी इस काल के मौलिक लेखकों में से थे। अखबार-नवीसों में बाबू बालमुकुंद गुप्त सब से अधिक प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्य के विभिन्न अंगों को ले कर बड़े ही उत्साहपूर्वक इन मे मौ[illegible]

रचनाएँ करने वाले हिंदी के ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इन की वाणी में हिंदी के बाल्यकाल की झलक है, पर यौवनागम की सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेम की भावनाओं को लेकर साहित्यक्षेत्र में आने के कारण इन सब की रचनाएँ हिंदी में अपने ढंग की अनोखी हुई हैं।

वर्तमान युग—जैसा कि हमने ऊपर कहा है, १९वीं सदी के अन्त, बल्कि बीसवीं सदी की प्रथम दशाब्दी तक हिन्दी पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की बहुत गहरी छाप रही। उसके बाद, पिछले महायुद्ध के साथ-साथ हिन्दी में वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। वर्तमान युग में हिंदी की बहुत अभिवृद्धि हुई है और उसका रूप भी निश्चित-सा हो गया है। यद्यपि अभी हिंदी के विकास का युग समाप्त नहीं हुआ। हिंदी गद्य की इस युग में विशेष उन्नति हुई है। अपने ग्रंथ के इस भाग में इस वर्तमान युग से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इस युग का वर्णन दूसरे भाग में किया जायगा और उसी भाग में हिंदी के वर्तमान रूप के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा भी जायगा।

४—हिन्दी का सर्वप्रथम ग्रन्थ

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय के शब्दों में—

"उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ था। ब्रिटिश शासन-वृक्ष की जड़ें गहरी पैठ रही थीं, और लार्ड वैलज़ली ने महसूस किया कि ज़िलों में नियुक्त होने वाले अंगरेज़ कर्मचारियों को भारतीय भाषाएँ सीखना आवश्यक है, ताकि वे शासन की बागडोर भली-भाँति सँभाल सकें, इस लिए सिविलियनों को देशी भा

सिखाने के उद्देश्य से सन् १८०० ई० में फोर्टविलियम कालेज की स्थापना हुई और डाक्टर गिलक्राइस्ट (Gilchrist) हिंदुस्तानी के प्रथम प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए।

इसी प्रकरण में यह वताना अप्रासंगिक न होगा कि ४ मई सन् १८०१ को फोर्ट विलियम कालेज के लिए मुंशियों की नियुक्ति हुई। मुंशी मीर बहादुर अली को मुख्य और तारिणीचरण मित्र को द्वितीय मुंशी नियुक्त किया गया—क्रमश दो सौ रुपये मासिक पर और सौ रुपये मासिक पर। इनके वारह मुंशियो के नाम हैं:— १) मुत्तन खाँ, (२) गुलाम अकबर (३) नसरुल्ल, (४) मीर वम्मन, (५ गुलाम अशरफ़, (६) हि लुद्दीन, (७) मुहम्मद सदीक, (८) रहमतुल्ला खाँ, (९) गौरुस, (१०) कुन्दनलाल, (११) काशीराज, और (१२) हैदरबख्श।

पर फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और डाक्टर गि क्राइस्ट की नियुक्ति के बाद सिविलियनों को हिन्दुस्तानी सिखाने में बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि उचित पाठ्य-पुस्तकों अभाव था। इसलिए कालेज के अधिकारियों ने उचित पुस्तकें तैयार कराने के लिए आज्ञा दी। हिन्दुस्तानी डाक्टर गिलक्राइस्ट को अपने काम में बड़ी कठिनाई हुई, और इसलिए उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी ४ जनवरी को एक पत्र लिखा, जिसका एक अवतरण दिया जाता है :—

" हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित है भाषा के उस भाग में मुझे उचित सहायता नहीं मिलती,

मुशी लोग 'भाखा' को बहुत ही कम समझते हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि ५०) मासिक पर किसी उपयुक्त व्यक्ति को कालेज के इस कठिन कार्य में सहायता देने के लिए नियुक्त करने की आज्ञा दी जाय। .''

फलस्वरूप गिलक्राइस्ट को ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुन्शी नियुक्त करने की आज्ञा मिल गई, और लल्लूलाल कवि ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुंशी नियुक्त हुए।

सन् १८०२ ई० में नक़लियाते हिन्दी—हिन्दी-कथा-संग्रह—भी प्रकाशित हुआ।

सन् १८०३ ई० में प्रेमसागर का कुछ भाग छपा। लल्लूलाल कवि ने मूल ब्रजभाषा में प्रेमसागर का अनुवाद किया। यह सन् १८०५ में छपा था।

सम्पूर्ण प्रेमसागर सन् १८१० ई० में संस्कृत प्रेस में लल्लूलाल कवि द्वारा छपाया गया।

सन् १८०/ ई० में सिंहासन बत्तीसी छपी।

सन् १८०५ ई० में बैताल पचीसी भी छपी थी।

सन् १८१५ में सभाविलास पुस्तक भी प्रकाशित हुई। सभाविलास कविता संग्रह था और उस का संकलन भाषा-मुशी लल्लूलाल ने किया था। इस पुस्तक का संकलन भाषा के विद्यार्थियों के लिए किया गया था, अर्थात् 'सभाविलास' फोर्ट विलियम कालेज के विद्याथर्यों के लिए पाठ्य-पुस्तक थी। 'सभा विलास' खिदरपुर स्थित संस्कृत प्रेस में छपी थी।

संस्कृत प्रेस के सम्बन्ध में यह बताना भी ज़रूरी है कि संस्कृत प्रेस के मालिक बाबूराम नाम व्यक्ति थे। बाबूराम

सिखाने के उद्देश्य से सन् १८०० ई० में फ़ोर्टविलियम कालेज की स्थापना हुई और डाक्टर गिलक्राइस्ट (Gilchrist) हिंदुस्तानी के प्रथम प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए।

इसी प्रकरण में यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि ४ मई सन् १८०१ को फोर्ट विलियम कालेज के लिए मुंशियों की नियुक्ति हुई। मुंशी मीर बहादुर अली को मुख्य और तारिणी-चरण मित्र को द्वितीय मुंशी नियुक्त किया गया—क्रमश दो सौ रुपये मासिक पर और सो रुपये मासिक पर। इनके बारह मुंशियों के नाम हैं:— १) मुत्तन खाँ, (२) गुलाम अकबर, (३) नरुल्ला, (४) मीर उम्मन, (५ गुलाम अशरफ़, (६) हि- लुद्दीन, (७) मुहम्मद सदीक, (८) रहमतुल्ला खाँ, (९) ... गौरुस, (१०) कुन्दनलाल, (११) काशीराज, और (१२) हैदरबख्श।

पर फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और डाक्टर गिल- क्राइस्ट की नियुक्ति के बाद सिविलियनों को हिन्दुस्तानी सिखाने में बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि उचित पाठ्य-पुस्तकों अभाव था। इसलिए कालेज के अधिकारियों ने उचित पुस्तकें तैयार कराने के लिए आज्ञा दी। हिन्दुस्तानी डाक्टर गिलक्राइस्ट को अपने काम में बड़ी कठिनाई हुई, और इसलिए उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी ४ जनवरी को एक पत्र लिखा, जिसका एक अवतरण दिया जाता है:—

"हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित है भाषा के इस भाग में मुझे उचित सहायता नहीं मिलती,

मुंशी लोग 'भाखा' को बहुत ही कम समझते हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि ५०) मासिक पर किसी उपयुक्त व्यक्ति को कालेज के इस कठिन कार्य में सहायता देने के लिए नियुक्त करने की आज्ञा दी जाय।..."

फलस्वरूप गिलक्राइस्ट को ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुन्शी नियुक्त करने की आज्ञा मिल गई, और लल्लूलाल कवि ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुंशी नियुक्त हुए।

सन् १८०२ ई० में नक़लियाते हिन्दी—हिन्दी-कथा-संग्रह—भी प्रकाशित हुआ।

सन १८०३ ई० में प्रेमसागर का कुछ भाग छपा। लल्लूलाल कवि ने मूल ब्रजभाषा में प्रेमसागर का अनुवाद किया। यह सन् १८०५ में छपा था।

सम्पूर्ण प्रेमसागर सन १८१० ई० में संस्कृत प्रेस में लल्लूलाल कवि द्वारा छपाया गया।

सन् १८०/ ई० में सिंहासन बत्तीसी छपी।

सन १८०४ ई० में बैताल पचीसी भी छपी थी।

सन् १८१५ में सभाविलास पुस्तक भी प्रकाशित हुई। सभाविलास कविता संग्रह था और उस का संकलन भाषा-मुंशी लल्लूलाल ने किया था। इस पुस्तक का संकलन भाषा के विद्यार्थियों के लिए किया गया था, अर्थात् 'सभाविलास' फोर्ट विलियम कालेज के विद्याथर्यों के लिए पाठ्य-पुस्तक थी। 'सभा विलास' खिदरपुर स्थित संस्कृत प्रेस में छपी थी।

संस्कृत प्रेस के सम्बन्ध में यह बताना भी ज़रूरी है कि संस्कृत प्रेस के मालिक बाबूराम नाम व्यक्ति थे। बाबूराम

सिखाने के उद्देश्य से सन् १८०० ई० में फ़ोर्टविलियम कालेज की स्थापना हुई और डाक्टर गिलक्राइस्ट (Gilchrist) हिंदुस्तानी के प्रथम प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए।

इसी प्रकरण में यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि मई सन् १८०१ को फोर्ट विलियम कालेज के लिए मुंशियों नियुक्ति हुई। मुंशी मीर बहादुर अली को मुख्य और चरण मित्र को द्वितीय मुंशी नियुक्त किया गया-क्रमश दो रुपये मासिक पर और सौ रुपये मासिक पर। इनके बारह मुंशियों के नाम हैं:— १) मुक्तन खाँ, (२) गुलाम (३) नरुल्ला, (४) मीर अम्मन, (५ गुलाम अशरफ़, (६) लुद्दीन, (७) मुहम्मद सदीक़, (८) रहमतुल्ला खाँ, (९) गौरुल, (१०) कुन्दनलाल, (११) काशीराज, और (१२) हैदरबख्श।

पर फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और डाक्टर क्राइस्ट की नियुक्ति के बाद सिविलियनों को हिन्दुस्तानी सिखाने में बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि उचित पाठ्य-पुस्तकों अभाव था। इसलिए कालेज के अधिकारियों ने उचित पुस्तकें तैयार कराने के लिए आज्ञा दी। हिन्दुस्तानी डाक्टर गिलक्राइस्ट को अपने काम में बड़ी कठिनाई हुई, और इसलिए उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी ६ जनवरी को एक पत्र लिखा, जिसका एक अवतरण दिया जाता है :—

"... हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित है भाषा के उस भाग में मुझे उचित सहायता नहीं मिलती,

मुशी लोग 'भाखा' को बहुत ही कम समझते हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि ५०) मासिक पर किसी उपयुक्त व्यक्ति को कालेज के इस कठिन कार्य में सहायता देने के लिए नियुक्त करने की आज्ञा दी जाय। ”

फलस्वरूप गिलक्राइस्ट को ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुन्शी नियुक्त करने की आज्ञा मिल गई, और लल्लूलाल कवि ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुंशी नियुक्त हुए।

सन् १८०२ ई० में नक़लियाते हिन्दी—हिन्दी-कथा-संग्रह —भी प्रकाशित हुआ।

सन १८०३ ई० में प्रेमसागर का कुछ भाग छपा। लल्लूलाल कवि ने मूल व्रजभाषा में प्रेमसागर का अनुवाद किया। यह सन् १८०५ में छपा था।

सम्पूर्ण प्रेमसागर सन १८१० ई० में संस्कृत प्रेस में लल्लूलाल कवि द्वारा छपाया गया।

सन् १८०/ ई० में सिंहासन बत्तीसी छपी।

सन १८०५ ई० में बैताल पचीसी भी छपी थी।

सन् १८१५ में सभाविलास पुस्तक भी प्रकाशित हुई। सभा-विलास कविता संग्रह था और उस का संकलन भाषा-मुशी लल्लूलाल ने किया था। इस पुस्तक का संकलन भाषा के विद्यार्थियों के लिए किया गया था, अर्थात् 'सभाविलास' फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक थी। 'सभा विलास' खिदरपुर स्थित संस्कृत प्रेस में छपी थी।

संस्कृत प्रेस के सम्बन्ध में यह बताना भी ज़रूरी है कि संस्कृत प्रेस के मालिक बाबूराम नाम व्यक्ति थे। बाबूराम

मुशी लोग 'भाखा' को बहुत ही कम समझते हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि ५०) मासिक पर किसी उपयुक्त व्यक्ति को कालेज के इस कठिन कार्य में सहायता देने के लिए नियुक्त करने की आज्ञा दी जाय। ."

फलस्वरूप गिलक्राइस्ट को ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुन्शी नियुक्त करने की आज्ञा मिल गई, और लल्लूलाल कवि ५०) मासिक पर 'भाखा'-मुंशी नियुक्त हुए।

सन् १८०२ ई० में नक़लियाते हिन्दी—हिन्दी-कथा-संग्रह—भी प्रकाशित हुआ।

सन् १८०३ ई० में प्रेमसागर का कुछ भाग छपा। लल्लूलाल कवि ने मूल ब्रजभाषा में प्रेमसागर का अनुवाद किया। यह सन् १८०५ में छपा था।

सम्पूर्ण प्रेमसागर सन् १८१० ई० में संस्कृत प्रेस में लल्लूलाल कवि द्वारा छपाया गया।

सन् १८०' ई० मे सिंहासन बत्तीसी छपी।

सन् १८०५ ई० में बैताल पचीसी भी छपी थी।

सन् १८१५ में सभाविलास पुस्तक भी प्रकाशित हुई। सभाविलास कविता संग्रह था और उस का संकलन भाषा-मुशी लल्लूलाल ने किया था। इस पुस्तक का संकलन भाषा के विद्यार्थियों के लिए किया गया था, अर्थात् 'सभाविलास' फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थयों के लिए पाठ्य-पुस्तक थी। 'सभा विलास' खिदरपुर स्थित संस्कृत प्रेस में छपी थी।

संस्कृत प्रेस के सम्बन्ध में यह बताना भी ज़रूरी है कि संस्कृत प्रेस के मालिक बाबूराम नाम व्यक्ति थे। बाबूराम

सिखाने के उद्देश्य से सन् १८०० ई० में फोर्टविलियम कालेज स्थापना हुई और डाक्टर गिलक्राइस्ट (Gilchrist) उस के प्रथम प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए।

इसी प्रकरण में यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि मई सन् १८०१ को फोर्ट विलियम कालेज के लिए मुंशियों नियुक्ति हुई। मुंशी मीर बहादुर अली को मुख्य और तारि चरण मित्र को द्वितीय मुंशी नियुक्त किया गया—क्रमशः दो रुपये मासिक पर और सौ रुपये मासिक पर। इनके अ बारह मुंशियों के नाम हैं:— १) मुहम्मद खाँ, (२) गुलाम (३) नसरुल्ला, (४) मीर अम्मन, (५ गुलाम अशरफ़, (६) लुद्दीन, (७) मुहम्मद सदीक़ (८) रहमतुल्ला खाँ, (९) मु गौहस, (१०) कुन्दनलाल, (११) काशीराज, और (१२) हैदरबख्श।

पर फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना और डाक्टर काइस्ट की नियुक्ति के बाद सिविलियनों को हिन्दुस्तानी सिखाने में बड़ी कठिनाई पड़ी, क्योंकि उचित पाठ्य-पुस्तकें अभाव था। इसलिए कालेज के अधिकारियों ने उचित पुस्तकें तैयार कराने के लिए आज्ञा दी। हिन्दुस्तानी डाक्टर गिलक्राइस्ट को अपने काम में बड़ी कठिनाई हुई, और इसलिए उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी ४ जनवरी को एक पत्र लिखा, जिसका एक अवतरण दिया जाता है :—

" हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित भाषा के ... नहीं मिलती, क

परिचय

उत्तर मध्य-कालीन तथा आधुनिक काल के प्रमुख गद्य-लेखकों का परिचय इस प्रकार है—

गुरु गोरखनाथ—चौदवीं सदी के अन्त मे गुरु गोरख नाथ का जन्म हुआ। वह एक माने हुए सिद्ध थे। सिद्ध प्रमाण, गोरखनाथ की बानी, गोरखनाथ के पद, ज्ञान सिद्धान्त जोग आदि आप की अनेक रचनाएं आज भी उपलब्ध हैं। इन रचनाओं का निर्माणकाल पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ मे जाता है। दो उदाहरण :—

१. "सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थस्नान करि चुकौ अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौं दै चुको अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि कौं संतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्त करि चुको जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म के बिचार बैठो।"

२. "श्री गुरु परमानन्द तिन को दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि को। तिन्हि के नित्य गाएते सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरषि अरु मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसे वे मछन्दरनाथ आत्म जोति निश्चल है अन्तहकरन जिनके अरु मूलद्वार तै छह चक्र जिनि नीकी तरह जानै।"

गोस्वामी विट्ठलदास—सोलहवीं सदी के मध्य में गोस्वामी विट्ठलदास का समय माना जाता है। उन के पिता का नाम गोस्वामी वल्लभाचार्य था। विट्ठलदास ने 'शृङ्गाररस मंडल' नाम का ग्रन्थ लिखा है। उसके गद्य का एक नमूना है—

"प्रथम की सखी कहतु है। जो गोपीजन के चरण विषै

त्रिलोचन घाट मिर्जापुर के रहने वाले थे। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। बाबूराम सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी थे, जिन्होंने सन् १८०६ में अपना प्रेस खोला। पं० बाबूराम खिदरपुर में रहते थे और वहीं पर उन का प्रेस भी था, जहाँ से वे हिन्दी और संस्कृत की छपाई करते थे।

सन् १८१५ ई० मे संस्कृत प्रेस लल्लूलाल की सम्पत्ति हो गया। जहाँ तक मैंने अनुसन्धान किया है, तुलसीदासजी की विनयपत्रिका को नागरी लिपि मे लल्लूलाल जी ने छापा था।

लल्लूलालजी भाषा-मुन्शी के पद पर १८२३ तक रहे और सन १८२४ ई० में उन के स्थान पर गंगाप्रसाद शुक्ल की नियुक्ति हुई।"

सर्वश्री आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मुंशी प्रेमचंद के साथ हिंदी में जिस वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है, उसका वर्णन इस ग्रन्थ मे दूसरे भाग में किया जायगा।

कपिलवस्तु }
मेरठ }

धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

आये उहां गाम वाहेर डेरा कीये और उहां श्री ठाकुरजीकुं वैठाय के वो ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो। गाम में वैष्णावनकुं पूंछ के दियो। वे पत्र वांच के वैष्णाव नें विचार कियो जो एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो। जब ये विचार कियो यामें भेद कुछ अवश्य होयगो। तब वैष्णावन नें वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन में सब ठिकाने फिरके पाच हजार रुपैया एकट्ठे करके और हुंडी करायके तब ब्रजवासी कुं दीनी। सो ब्रजवासी लेके और परेकुं संग लेके वहातें चले। फेर रस्ता में आनके सोय रहे फेर सवारे उठके पेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में आये फेर भंडारी के पास गयो और दो सीधा मागे। जब भण्डारी ने कही सूरत क्युं गयो नहीं जब वानें कही सूरत जाय आयोहुं पत्र और वस्त्र लायोहुं। सो भण्डारीकुं दीये। जब भण्डारी नें पाच हजार की हुंडी और वस्त्र और वैष्णावन के कागद देख के चकित होय गयो।"

गंग, नाभादास और जटमल का वर्णन पूर्व हो चुका है।

वैकुंठमणि—का रचनाकाल सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में है। उन्हों ने अगहन-माहात्म्य और वैशाख-माहात्म्य नामक पुस्तकें लिखीं। उनके संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उदा०—

"एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तैं उठिकै सुमेर पर्वत गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विपै आये तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए।"

मुन्शी सदासुखलाल—इनका जन्म सन् १७५७ और निधन सन् १८२५ में हुआ। मुन्शी जी एक अच्छे कवि थे। उनका उपनाम, नियाज़ था। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकर थे। हिन्दी के अतिरिक्त वह उर्दू और फारसी के भी पण्डित थे।

सेवक की दासी करि तो इन को प्रेमामृत में डूबि कै इन के मन्द हास्य ने जीते हैं। अमृत समूह ताकरि निकुंज विषै शृङ्गाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत पाई।"

गोस्वामी गोकुलनाथ—गोस्वामी विट्ठलदास के सुपुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ ने गद्य लेखन में और भी अधिक ख्याति प्राप्त की। उन की लिखी तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। गोकुलदास जी के गद्य का एक उदाहरण है—

"एक दिन भण्डारी नें वा ब्रजवासी सुं कही जो तुम सूरत गाँम में जाय के भेट ले आवो। जब ब्रजवासी ने कही सूरत गाम काहा होवे है। भण्डारी ने कही सूरत गाम सहेर है जब व ब्रजवासी नें कही भेटपत्र और प्रसाद की थेली देवो तो मैं सूर[त]
[जा]उं। जब वहांसुं प्रसाद और पत्र लेके और रसोई करके सूर[त]
की तैयारी करी और कही जो भैया परे मैं तो सूरत जाउंगो औ[र]
तु आवेगो के नहीं आवेंगो। जब श्री ठाकुर नें कही जो [मैं]
आंवुगो जब वानें कही जो तेरे छोटे छोटे पांव हैं। और छो[टे]
छोटे हाथ हैं तुं कैसे चल सकेंगो। जब श्री ठाकुरजीनें कही [मैं]
थोडो थोडो चलुंगो। और थोडीवार तेरे कांधे पर बैठूगो। ये वा[त]
कहिके श्री ठाकुरजी ब्रजवासी के साथ चले वे उहां ते ब्रजवासी च[ले]
जब दो तीन कोस आये तब श्री ठाकुरजी नें कही मैं थक गयो हूँ
जब वा ब्रजवासी के काँधा ऊपर बैठे जब थोरो दूर चले तब सां[झ]
भई तब श्री ठाकुरजी नें कही जो आज उहां सोए रहो फेर का[ल]
चलेंगे फेर उहां सोय रहे फेर सवारे उठे सो ऐसे ठिकाणे [...]
[...] सूरत होय कोश रही हती। मब उहांतें चले फेर सू[रत]

आये उहां गाम बाहेर डेरा कीये और उहा श्री ठाकुरजीकु बैठाय के वो-ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो। गाम में वैष्णवनकु पूछ के दियो। वे पत्र बाच के वैष्णव नें विचार कियो जो एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो। जब ये विचार कियो यामे भेद कुछ अवश्य होयगो। तब वैष्णवन नें वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन में सब ठिकाने फिरके पांच हजार रुपैया एकट्ठे करके और हुंडी करायके तब ब्रजवासी कुं दीनी। सो ब्रजवासी लेके और परेकु संग लेके उहातें चले। फेर रस्ता में आनके सोय रहे फेर सवारे उठके पेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में आये फेर भंडारी के पास गयो और दो सोधा मांगे। जब भण्डारी ने कही सूरत क्युं गयो नहीं जब वानें कही सूरत जाय आयोहुँ पत्र और वस्त्र लायोहु। सो भण्डारीकुं दीये। जब भण्डारी ने पाच हजार की हुंडी और वस्त्र और वैष्णवन के कागद देख के चकित होय गयो।"

गंग, नाभादास और जटमल का वर्णन पूर्व हो चुका है।

वैकुंठमणि—का रचनाकाल सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में है। उन्हों ने अगहन-माहात्म्य और वैशाख-माहात्म्य नामक पुस्तकें लिखीं। उनके संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उदा०—

"एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तै उठिकै सुमेर पर्वत गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विषै आये तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए।"

मुन्शी सदासुखलाल—इनका जन्म सन् १७५७ और निधन सन् १८२५ मे हुआ। मुन्शी जी एक अच्छे कवि थे। उनका उपनाम, नियाज़ था। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकर थे। हिन्दी के अतिरिक्त वह उर्दू और फारसी के भी पण्डित थे।

सेवक की दासी करि तो इन को प्रेमामृत में डूबि कै इन के मन्द हास्य ने जीते हैं। अमृत समूह ताकरि निकुंज विषै शृङ्गाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत पाई।"

गोस्वामी गोकुलनाथ—गोस्वामी विट्ठलदास के सुपुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ ने गद्य लेखन मे और भी अधिक ख्याति प्राप्त की। उन की लिखी तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। गोकुलदास जी के गद्य का एक उदाहरण है—

"एक दिन भण्डारी नें वा ब्रजवासी सुं कही जो तुम सूरत गाँम में जाय के भेट ले आवो। जब ब्रजवासी नें कही सूरत गाम काहा होवे है। भण्डारी ने कही सूरत गाम सहेर है जब वा ब्रजवासी नें कही भेटपत्र और प्रसाद की थेली देवो तो में सूरत जाउं। जब उहांसुं प्रसाद और पत्र लेके और रसोई करके सूरत की तैयारी करी और कही जो भैया परे मैं तो सूरत जाउगो और तुं आवेगो के नहीं आवेंगो। जब श्री ठाकुर नें कही जो मैं आंवुगो जब वानें कही जो तेरे छोटे छोटे पांव हैं। और छोटे छोटे हाथ हैं तुं कैसे चल सकेंगो। जब श्री ठाकुरजीनें कही मैं थोडो थोडो चलुंगो। और थोडीवार तेरे कांधे पर बैठूंगो। ये बा कहिके श्री ठाकुरजी ब्रजवासी के साथ चले वे उहां ते ब्रजवासी जब दो तीन कोस आये तब श्री ठाकुरजी नें कही मैं थक गयो हूं जब वा ब्रजवासी के कांधा ऊपर बेठे जब थोरो दूर चले तब भई तब श्री ठाकुरजी नें कही जो आज उहां सोए रहो फेर चलेंगे फेर उहां सोय रहे फेर सवारे उठे सो ऐसे ठिकाये सुं सूरत दोय कोश रही हती। जब उहांतें चले फेर

आये उहां गाम बाहेर डेरा कीये और उहां श्री ठाकुरजीकुं बैठाय के वो ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो। गाम में वैष्णवनकु पूछ के दियो। वे पत्र बांच के वैष्णव नें विचार कियो जो एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो। जब ये विचार कियो यामे भेद कुछ अवश्य होयगो। तब वैष्णवन नें वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन में सब ठिकाने फिरके पाच हजार रुपैया एकट्ठे करके और हुंडी करायके तब ब्रजवासी कुं दीनी। सो ब्रजवासी लेके और परेकुं संग लेके उहातें चले। फेर रस्ता में आनके सोय रहे फेर सवारे उठके पेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में आये फेर भडारी के पास गयो और दो सीधा मागे। जब भण्डारी ने कही सूरत क्युं गयो नहीं जब वानें कही सूरत जाय आयोहुँ पत्र और वस्त्र लायोहुं। सो भण्डारीकु दीये। जब भण्डारी नें पांच हजार की हुंडी और वस्त्र और वैष्णवन के कागद देख के चकित होय गयो।"

गंग, नाभादास और जटमल का वर्णन पूर्व हो चुका है।

वैकुंठमणि—का रचनाकाल सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में है। उन्हों ने अगहन-माहात्म्य और वैशाख-माहात्म्य नामक पुस्तकें लिखीं। उनके संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। उदा०—

"एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तें उठिकै सुमेर पर्वत गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विषे आये तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए।"

मुन्शी सदासुखलाल—इनका जन्म सन् १७५७ और निधन सन् १८२५ मे हुआ। मुन्शी जी एक अच्छे कवि थे। उनका उपनाम, नियाज़ था। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकर थे। हिन्दी के अतिरिक्त वह उर्दू और फारसी के भी पण्डित थे।

उनका देहान्त प्रयाग में हुआ, जहां नौकरी छोड़ कर वह हरि-भजन किया करते थे। मुन्शी सदासुखलाल ने जिस सुखसागर की रचना की वह आज उपलब्ध नहीं होता। अनेक समालोचकों की राय है कि मुन्शी सदासुख लाल की शैली लल्लूलाल की शैली से भी अधिक श्रेष्ठ थी। उनकी शैली पर उर्दू मुहावरे का प्रभाव अवश्य पड़ा था, परन्तु वह वास्तव में विशुद्ध हिन्दी शैली ही थी। उसमे संस्कृत शब्दों की ही प्रधानता थी, कुछ नमूने—

"जो सत्य बात होय उसे कहा चाहिए, को बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सत्तोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए, व्यभिचार कीजिए, और सुरापान कीजिए, और द्रव्य धन इकठौरा कीजिए मन को कि जो तमोवृत्ति से भरा है उसे निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

—हिन्दी-भाषा सार, पृ० ५

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमे इस बात का डर नहीं।

"धन्य कहिए राजा दधीची को कि नारायण की आज्ञा अपने सिर पर चढ़ायी, अपने हाड ऐसे कामी कुटिल अहँकारी को दे दिये कि उसने हाड़ों को वज्र बनाय कर वृत्रासुर से हानी

से युद्ध किया और उसे मारा। जो महाराज की आज्ञा और दधीची के हाड़ का वज्र न होता तो ग्यारह जन्म ताईं वृत्रासुर से युद्ध में सरवर और प्रबल न होता और जय पाता। (सुख-सागर)

सैयद इंशाअल्ला खाँ—इन के पूर्वज समरकंद से भारत वर्ष मे आए थे। उनके पिता हकीम मीर माशा अल्ला खाँ मुर्शिदाबाद के नवाब जुल्फ़िक़ार अली खाँ के खास हकीम थे। इशाअल्ला खॉ बचपन ही से मेधावी और स्वाध्यायप्रिय थे बहुत शीघ्र वह श्रेष्ट कवि बन गए। नवाब सिराजुद्दौला के मरने के बाद वह दिल्ली चले आए और शाह आलम द्वितीय के दरबार मे रहने लगे। वह स्वयं भी कवि था। इस से उसने इंशा अल्ला खॉं का खूब आदर किया।

गुलाम कादिर ने जब दिल्ली पर आक्रमण कर शाह आलम को अन्धा कर दिया तो इशा अल्लाखॉ वहाँ से नवाब आसफुद्दौल्ला के यहाँ लखनऊ चले गए। क्रमशः वह नवाब के कृपापात्र बन गए। उनका भाग्य चमक उठा। यह सन् १७८६ की बात है।

परन्तु भाग्यचक्र घूम गया। नवाब और इंशा अल्ला खॉ मे किसी बात पर परस्पर वैमनस्य हो गया और इंशा अल्ला खाँ का वेतन बन्द कर दिया गया। इन्हीं दिनों उनके एक पुत्र की मृत्यु हो गई। क्रमशः सैयद साहब को खाने पीने की भी दिक्कत रहने लगी। इन कष्ट के दिनो मे उनके मस्तिष्क में भी विकार आगया। सन् १८१६ में उनका देहान्त हो गया। सैयद इंशा अल्ला की शैली पर उर्दू की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। यह स्वाभाविक ही था, क्यो कि सैयद साहब उर्दू के भी अग्रगण्य लेखक थे।

लल्लूलाल—फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दी शिक्षक भी

लल्लूलाल के सम्बन्ध में, भूमिका मे, 'हिन्दी का प्रथम ग्रन्थ' शीर्षक के नीचे काफी विस्तार से लिखा जा चुका है। लल्लूलाल का जन्म सन् १७६४ मे हुआ। और निधन सन् १८३६ में। लल्लूलाल की शैली में ब्रजभाषा की काफी पुट है, उसमें विदेशी शब्दों का समावेश नहीं। उनका 'प्रेमसागर' साहित्यिक दृष्टि से बहुत रसमय रचना है। लल्लूलाल ने उर्दू भाषा में भी अनेक ग्रन्थ लिखे।

सदल मिश्र—पं० सदल मिश्र लल्लूलाल के ही समकालीन थे, यद्यपि आयु मे और पद में वह उन से छोटे थे। वह भी फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी शिक्षक का कार्य करते थे। वहीं उन्होंने नासिकेतोपाख्यान का हिन्दी अनुवाद किया था।

मक्खनलाल—यह एक रईस पंजाबी खत्री थे। वृद्धावस्था मे यह काशी जाकर रहने लगे। वहां उन्होंने संस्कृत और हिन्दी का अभ्यास किया। सन् १८४७ में उन्हों ने उर्दू में 'सुखसागर' लिखा, जिस का बाद में हिन्दी अनुवाद कर दिया। इस अनुवाद मे भी पहले उर्दू शब्दो की भरमार थी, परन्तु बाद मे उन्हों ने उसे ठीक कर दिया।

राजा शिवप्रसाद—जन्म सन् १८१४ और मृत्यु सन १८९६। शिवप्रसाद ने सिक्ख युद्ध में अंग्रेज़ों की बहुत अधिक सहायता की थी अतः विजय के बाद उन्हे शिक्षा विभाग में इन्स्पेक्टर बना दिया गया। उन दिनों युक्तप्रान्त में उर्दू का बोलबाला था। राजा साहब हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि के समर्थक थे, अतः बहुत प्रयत्नपूर्वक उन्होंने शिक्षा विभाग में हिन्दी और नागरी का प्रवेश शुरू किया। उर्दू के पक्षपाती

नाराज़ न हो जायं, इस डर से राजा साहब ने अपनी शैली मे उर्दू शब्दों तथा उर्दू मुहावरो का जी खोलकर प्रयोग किया। परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा बहुत अधिक उर्दूमय होगई। उन दिनों हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों का भी अभाव था, इस से राजा साहब ने स्कूलों में पढ़ाने के लिए स्वयं बहुत सी पुस्तकें लिखीं। "राज साहब जी जान से इस उद्योग मे थे कि लिपि देवनागरी हो और भाषा ऐसी मिलीजुली रोज़मर्रा की बोलचाल की हो कि किसी पक्षवाले को एतराज न हो सके।"

इसी विचार से प्रेरित हो उन्होंने अपनी पहले की लिखी पुस्तकों में भाषा का मिला-जुला रूप रखा। लोगों का यह कहना कि "राजा साहब की भाषा वर्तमान भाषा से बहुत मिलती है, केवल यह साधारण बोलचाल की ओर अधिक झुकती है और उसमे कठिन संस्कृत अथवा फारसी के शब्द नहीं हैं" उनकी संपूर्ण रचनाओ पर नहीं चरितार्थ होता। उनकी पहले की भाषा अवश्य मध्यवर्ती मार्ग की थी। इसके अनुसार उन्होने स्थान स्थान पर साधारण उर्दू, फ़ारसी तथा अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। साथ ही संस्कृत के चलते और साधारण प्रयोग मे आनेवाले उत्सम शब्दों को भी उन्होंने लिया है। इसके अतिरिक्त 'लेवे' एसे पंडिताऊ रूप भी वे रख देते थे। देखिए—"सिवाय इसके मै तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणो को दान दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी

लल्लूलाल के सम्बन्ध मे, भूमिका मे, 'हिन्दी का प्रथम ग्रन्थ' शीर्षक के नीचे काफी विस्तार से लिखा जा चुका है। लल्लूलाल का जन्म सन् १७६४ मे हुआ। और निधन सन् १८३६ मे। लल्लूलाल की शैली मे व्रजभाषा की काफी पुट है, उसमे विदेशी शब्दो का समावेश नहीं। उनका 'प्रेमसागर' साहित्यिक दृष्टि से बहुत रसमय रचना है। लल्लूलाल ने उर्दू भाषा में भी अनेक ग्रन्थ लिखे।

सदल मिश्र--पं० सदल मिश्र लल्लूलाल के ही समकालीन थे यद्यपि आयु मे और पद मे वह उन से छोटे थे। वह भी फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी शिक्षक का कार्य करते थे। वहीं उन्होने नासिकेतोपाख्यान का हिन्दी अनुवाद किया था।

मक्खनलाल--यह एक रईस पंजाबी खत्री थे। वृद्धावस्था मे यह काशी जाकर रहने लगे। वहां उन्होंने संस्कृत और हिन्दी का अभ्यास किया। सन् १८८७ में उन्हों ने उर्दू मे 'सुखसागर' लिखा, जिस का बाद मे हिन्दी अनुवाद कर दिया। इस अनुवाद मे भी पहले उर्दू शब्दो की भरमार थी, परन्तु बाद मे उन्हो ने उसे ठीक कर दिया।

राजा शिवप्रसाद--जन्म सन् १८१४ और मृत्यु सन् १८६६। शिवप्रसाद ने सिक्ख युद्ध में अंग्रेज़ों की बहुत अधिक सहायता की थी और विजय के बाद उन्हे शिक्षा विभाग में इन्स्पेक्टर बना दिया गया। उन दिनों युक्तप्रान्त में उर्दू का बोलबाला था। राजा साहब हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि समर्थक थे, और बहुत प्रयत्नपूर्वक उन्होंने शिक्षा विभाग में हिन्दी और नागरी का प्रवेश शुरू किया। उर्दू के पक्षपाती

१८ भक्ति पक्ष के ग्रंथ हैं, जिन में वैष्णवसर्वस्व, वल्लभीय-सर्वस्व उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा वैष्णववार्ता और भारतवर्ष उत्तम रचनाएं हैं। पंचम भाग का नाम काव्यामृतप्रवाह है। इसमें १८ प्रेमप्रधान ग्रंथ हैं, जिनमें प्रेम फुलवारी, प्रेमप्रलाप, प्रेममालिका और कृष्ण-चरित्र प्रधान हैं। नाटकावली के अतिरिक्त भारतेंदु का यह भाग प्रशंसनीय है। छठे भाग में हंसी-मज़ाक के चुटकुले और छोटे-छोटे कई निबंध तथा तथा अन्य लोगों के बनाए कई ग्रन्थ हैं, जो इनके द्वारा प्रकाशित हुए थे।

वालकृष्ण भट्ट—भट्ट जी का जन्म सन् १८५५ मे हुआ। भारतेन्दु ने पं० वालकृष्ण भट्ट को अच्छा उत्साह दिया। भट्ट जी ३२ वरसों तक मासिक 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक रहे। वह एक अच्छा साहित्यिक पत्र था। कालिराज की सभा, सौ अजान एक सुजान, विकट खेल आदि उनकी सुन्दर कृतिया हैं। पद्मावती आदि अनेक सुन्दर नाटक भी भट्ट जी ने लिखे।

अम्बिकादत्त व्यास—जन्म सन् १८५८, देहान्त १६०० जयपुर के पं०अम्बिकादत्त व्यास संस्कृतके धुरंधर विद्वान थे। अपनी छोटी सी आयुमे उन्होंने करीव ७८ ग्रन्थो का निर्माण किया। वह आशु कवि भी थे। अनेक नाटक भी उन्होंने लिखे। आजीवन वह संस्कृत अध्यापक का कार्य करते रहे। ललिता, गोसंकट, भारत सौभाग्य, गद्य मीमांसा, विहारी-विहार आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

प्रताप नारायण मिश्र—भारतेन्दु के वाद, उनके समकालीन अथवा उन से प्रभावित लेखकों में पं० प्रताप नारायण मिश्र ने सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की। उनका जन्म सन् १८५६ और

तालाव नहाने से न छोडा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।" कुछ दिन लिखने पढ़ने के उपरांत राजा साहब के विचार बदलने लगे और अन्त में आते आते वे हमें उस समय के एक कट्टर उर्दू-भक्त के रूप में दिखाई पडते हैं। उस समय उनमे न तो वह मध्यम मार्ग का सिद्धांत ही दिखाई पड़ता है, न विचार ही। भावप्रकाशन की विधि, शब्दावली और वाक्य-विन्यास आदि सभी उनके उर्दू ढाँचे मे ढले दिखाई पडते हैं। जैसे—"इसमे अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और अब कहना चाहिए अँगरेजी के भी शब्द कंधे से कंधा भिडाकर यानी दोश बदोश चमक दमक और रौनक पावें, न इस बेतर्तीबी से कि जैसा अब गडबड़ मच रहा है, बल्कि एक सल्तनत के मानिंद कि जिसकी हदे कायम हो गई हों और जिसका इंतिज़ाम मुंतज़िम की अक्लमंदी की गवाही देता है।"

राजा साहब की उपयुक्त शैली से हिन्दी जनता मे असन्तोष होना स्वाभाविक ही था। वैसा ही हुआ भी। आने वाले लेखकों ने राजा शिवप्रसाद की उपर्युक्त शैली को पसन्द नही किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती—आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८२५ मे तथा निधन सन् १८८३ मे हुआ। भारतवर्ष के वर्तमान युग की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में स्वामी दयानन्द की गणना है। वह औदीच्य गुजराती ब्राह्मण थे परन्तु उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपना लिया। स्वामी दयानन्द ने अपनी सम्पूर्ण रचनाए हिन्दी या संस्कृत मे ही लिखी। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति और धुरंधर व्याख्याता थे। उन की शैली बहुत मनोरंजक है। अपने समय के वह अत्यन्त श्रेष्ठ हिन्दी

गद्य-लेखक थे। बाबू हरिश्चन्द्र को छोड कर उनका-सा गद्य लेखक उनका समकालीन कोई दूसरा व्यक्ति नहीं हुआ। अपने महान व्यक्तित्व और निरन्तर अध्यवसाय से स्वामी दयानन्द ने भारतवर्ष मे प्रत्येक दृष्टि से नवजीवन का संचार कर दिया। वह पुनरुत्थानवादी थे उनकी हिन्दी पर भी संस्कृत की झलक स्पष्टरूप से देखी जाती है। हिन्दी मे स्वामी जी ने बहुत से ग्रन्थ लिखे।

राजा लक्ष्मणसिंह—आगरा के राजा लक्ष्मणसिंह का जन्म सन् १८२७ मे और देहान्त १८६७ मे हुआ। राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी मे जिस उर्दू प्रधान शैली का प्रारम्भ किया था, उसके राजा लक्ष्मणसिंह घोर विरोधी थे। उन्होने संस्कृत-प्रधान शैली का आश्रय लिया। राजा साहब डिप्टी कलेक्टर थे, परन्तु सरकारी कार्य से अवसर निकाल प्रायः लिखते लिखाते रहते थे। उन्होंने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी मे अनुवाद किया। 'शकुन्तला' उन में सब से अधिक प्रसिद्ध है।

"जितना पुष्ट और व्यवस्थित गद्य हमे उन की रचना मे मिलता है उतना पूर्व के किसी भी लेखक की रचना में नहीं उपलब्ध हुआ था। गद्य के इतिहास मे इतनी स्वाभाविक विशुद्धता का प्रयोग उस समय तक किसी ने नहीं किया। इस दृष्टि से राजा लक्ष्मणसिंह का स्थान तत्कालीन गद्य-साहित्य मे सर्वोच्च है। यदि राजा साहब विशुद्धता लाने के लिये बद्धपरिकर होने में कुछ भी आगापीछा करते तो भाषा का आज कुछ और ही रूप रहता।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को वर्तमान हिन्दी गद्य का पिता माना जाता है। राजा शिवप्रसाद की उर्दू शैली और राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत शैली का परस्पर

समन्वय कर भारतेन्दु ने मध्यम मार्ग पकड़ा, और अपनी प्रतिभा के बल पर अपनी शैली को इतना लोकप्रिय बना दिया कि सम्पूर्ण आधुनिक काल को भारतेन्दु काल कहना अनुचित न होगा।

भारतेन्दु का जन्म सन् १८५० में तथा निधन सन् १८८४ में हुआ। आधुनिक काल में हिन्दी गद्य की शैली को एक प्रामाणिक और परिमार्जित रूप देने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। अपनी छोटी सी आयु में ही उन्होंने हिन्दी की अनुपम सेवा की। सत्रह वर्ष की अवस्था से इन्होंने काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी और अंत समय तक ये काव्यानन्द ही मे मग्न रहे। इनकी रचनाओं का संग्रह छः भागों मे खड्गविलास-प्रेस से प्रकाशित हुआ है। सब मिलकर इनके छोटे-बड़े १७५ ग्रंथ इस संग्रह मे हैं। प्रथम भाग मे १८ नाटक और १ ग्रंथ नाटकों के नियमों का है। इनमें सत्यहरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, और प्रेमयोगिनी प्रधान हैं। भारतदुर्दशा और नीलदेवी मे भारतेन्दु का स्वदेश-प्रेम दर्शनीय है। चंद्रावली से २... धर्म म प्रेम और भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। सत्यहरिश्चद्र भारतेन्दु की कवित्व-शक्ति का एक अद्भुत नमूना है प्रेमयोगिनी मे इन्हो ने अपने विषय की बहुत सी बातें लिखी हैं इसमे हँसी-मज़ाक का अच्छा चमत्कार है। द्वितीय भाग में न... रंजित इतिहास ग्रंथों का संग्रह है, जिसमें काश्मीर कुसुम, बादशा... दर्पण और चरितावली प्रधान हैं और चरितावली में इन्होंने ... अच्छे महानुभावों के चरित्रों का वर्णन किया है। तृतीय भाग राजभक्तिसूचक काव्य हैं। इसमें १३ ग्रंथ हैं, परन्तु उनकी ... महत्व नहीं हुई है। चतुर्थ भाग का नाम भक्तिसर्वस्व है। इ...

१८ भक्ति पक्ष के ग्रंथ हैं, जिन में वैष्णवसर्वस्व, वल्लभीय-सर्वस्व उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा वैष्णववार्ता और भारतवर्ष उत्तम रचनाएं हैं। पंचम भाग का नाम काव्यामृतप्रवाह है। इसमें १८ प्रेमप्रधान ग्रंथ हैं, जिनमें प्रेम फुलवारी, प्रेमप्रलाप, प्रेममालिका और कृष्ण-चरित्र प्रधान हैं। नाटकावली के अतिरिक्त भारतेंदु का यह भाग प्रशंसनीय है। छठे भाग में हंसी-मज़ाक के चुटकुले और छोटे-छोटे कई निबंध तथा तथा अन्य लोगों के बनाए कई ग्रन्थ हैं, जो इनके द्वारा प्रकाशित हुए थे।

बालकृष्ण भट्ट—भट्ट जी का जन्म सन् १८५५ में हुआ। भारतेन्दु ने पं० बालकृष्ण भट्ट को अच्छा उत्साह दिया। भट्ट जी ३२ बरसों तक मासिक 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक रहे। वह एक अच्छा साहित्यिक पत्र था। कालिराज की सभा, सौ अजान एक सुजान, विकट खेल आदि उनकी सुन्दर कृतियां हैं। पद्मावती आदि अनेक सुन्दर नाटक भी भट्ट जी ने लिखे।

अम्बिकादत्त व्यास—जन्म सन् १८५८, देहान्त १६०० जयपुर के पं०अम्बिकादत्त व्यास संस्कृतके धुरंधर विद्वान थे। अपनी छोटी सी आयुमे उन्होंने करीब ७८ ग्रन्थों का निर्माण किया। वह आशु कवि भी थे। अनेक नाटक भी उन्होंने लिखे। आजीवन वह संस्कृत अध्यापक का कार्य करते रहे। ललिता, गोसंकट, भारत सौभाग्य, गद्य मीमांसा, विहारी-विहार आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

प्रताप नारायण मिश्र—भारतेन्दु के बाद, उनके समकालीन अथवा उन से प्रभावित लेखकों में पं० प्रताप नारायण मिश्र ने सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की। उनका जन्म सन् १८५६ और

देहान्त सन् १८६४ में हुआ । पं० प्रताप नारायण मिश्र बहुत ही जिन्दादिल और मज़ाकपसंद साहित्यिक थे। 'जपो निरन्तर एक ज़बान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान,, आदि बहुत से सुप्रसिद्ध वाक्य इन्हीं के बनाये हुए हैं । उनका देहान्त केवल ३८ वर्ष की आयु मे हो गया, इस से हिन्दी की बहुत बड़ी क्षति हुई। प्रताप नारायण मिश्र राष्ट्रीय विचारों के सज्जन थे। उन्होंने १६ मौलिक ग्रन्थ लिखे, १२ अनुवाद किए और ३ संग्रह । मिश्र जी की रचनाओं का हिन्दी में अच्छा आदर हुआ।

बदरीनारायण चौधरी—जन्म सन् १८५५ । पं० बदरीनारायण चौधरी का देहांत हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ । हिंदी में वह 'प्रेमघन' के नाम से प्रसिद्ध थे । वह भारतेंदु हरिश्चंद्र के मित्रों में थे । हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति-पद को भी चौधरी जी ने सुशोभित किया था। अपने समय के वह एक अत्यंत लोकप्रिय कवि और लेखक थे । कुल मिला कर उन्होंने २६ ग्रन्थ लिखे।

लल्लूलाल

(१)

परीक्षित और कलियुग

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्ध्यान हुए, तब पाण्डव महा दुखी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे, आप हिमालय में गलने को चले गये। तब राजा परीक्षित सब देशों को जीत कर धर्मराज्य करने लगे। फिर कुछ काल के बाद, एक दिन राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहां क्या देखा कि एक गौ और एक बैल दौड़े चले आते हैं। उनके पीछे मूशल हाथ में लिये, एक शूद्र उन दोनों को मारता हुआ आ रहा है। जब वे सब पास पहुचे तब राजा ने शूद्र को ललकार कर कहा कि अरे तू कौन है ? अपना नाम जल्द कह कि गौ और बैल को क्यों मारता है। तैनें क्या अर्जुन को दूर गया जाना है ? क्योंकि तैने उसका धनुप नहीं पहचाना है। सुन, पाण्डव के कुल में ऐसा किसी को भी न पावेगा कि जिसके सामने कोई दीन को सता सके। इतना कह कर राजा ने हाथ मे ले लिया। यह देख वह डर कर खड़ा हो गया।

नरपति ने गौ और बैल को निकट बुला के पूछा कि तुम कौन हो ? मुझे बुझा कर कहो कि देवता हो या ब्राह्मण ? और तुम किसलिए भागे जाते हो ? यह बात निधड़क हो कहो, मेरे रहते किसी की सामर्थ नहीं है, जो तुम्हे दुःख दे सके। इतनी बातें सुनकर बैल सिर झुका कर बोला कि हे महाराज! यह जो पाप रूपी, कालवर्ण, डरावनी सूरतवाला आप के सन्मुख खड़ा है, सो कलियुग है। इसी के आगे से मैं भागा जाता हूँ। और यह गौ स्वरूपवान पृथ्वी है। यह भी इसी के डर से भागी चली जाती है। हे राजन्! मेरा नाम धर्म है। मैं चार पाँव रखता हूँ। यथा —तप, सत्य, दया और शौच। सतयुग में मेरे चरण बीस-बिस्वे बचे थे, त्रेता मे सोलह, द्वापर मे बारह, कलियुग में चार-बिस्वे बचे हैं। इसलिये कलि के बीच में चल नहीं सकता हूँ। इसके बाद धरती बोली कि हे धर्मावतार! मुझ से भी इस युग में रहा नहीं जाता है, क्योंकि शूद्र हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे, उसका बोझ मैं न सह सकूंगी इस भय से मैं भागती हूँ। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा कि मैं तुझे अभी मारता हूँ। यह सुन कर घबड़ा कर राजा के चरणों पर गिर पड़ा और गिडगिड़ा कर कहने लगा कि हे पृथ्वीनाथ! अब मैं तुम्हारी शरण हूँ, अत मुझे कहीं को ठौर बताओ। क्योंकि ब्रह्मा ने मुझे तीनों काल और चारों युग मे रहने को बनाया है, सो तो किसी भाँति मिट नहीं है। कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर मे रहो—जूआ, मद, वेश्या, हत्या, चोरी, सूम का धन और सुवर्ण में वास करो यह सुन ने अपने स्थान को प्रस्थान किया,

राजा ने धर्म को अपने मन मे रख लिया, तथा पृथ्वी अपने रूप मे मिल गई, फिर राजा अपने नगर में आये, धर्मराज्य करने लगे। कुछ दिन बाद एक दिन राजा सुवर्ण का मुकुट धारण कर आखेट को गये। जब चलते २ प्यास से बड़े व्याकुल भये तो फिर क्या था, शिर के मुकुट मे तो कलियुग रहता ही था, उसने अपना अवसर पाकर राजा को अज्ञानी कर दिया। राजा प्यास के मारे आते २ वहाँ आया, जहाँ शमीक ऋषि आसन मारे नयन मूँद हरि का ध्यान लगाये, तप कर रहे थे। उन्हे देख परीक्षित मन में कहने लगा कि अपने तप के घमण्ड से मुझे देख कर भी आंखें बन्द किये हैं। उसे ऐसी कुमति उठी कि एक मरा भया साँप, जो वहाँ पडा था, सो धनुष से उठा कर ऋषि के गले मे डाल दिया और आप अपने घर चला आया। मुकुट के उतारते ही जब राजा को ज्ञान हुआ तो, सोच कर कहने लगा कि कञ्चन मे कलियुग का बास था। यह मुकुट मेरे शीश पर था, इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प लेकर ऋषि के गले मे डाल दिया। अस्तु, अब मैने समझा कि कलियुग ने मुझ से बदला लिया है। हे भगवान् ! इस महापाप से कैसे छूटूंगा। मेरा धन, जन, स्त्री और राज्य, यह सब क्यो न चला गया ? अब न जाने, किस जन्म मे यह मेरा अधर्म जायगा। जो कि मैंने ब्रह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तो यहां इस अथाह सोच सागर में डूब ही रहे थे कि जहाँ पर शमीक ऋषि थे वहाँ पर कुछ लडके खेलते हुए जा निकले और मरा उनके गले मे देख अचम्भे में रह गए। पुनः घबरा कर में कहने लगे कि भाइयो ! अब कोई उनके पुत्र से

दो कि ऐसी व्यवस्था है। शृंगी ऋषि उपवन मे कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों के संग खेलता है। यह सुनते ही एक लड़का दौड़ा हुआ वहाँ गया जहाँ शृंगी ऋषि बालकों के साथ खेलते थे। वहाँ जाकर कहा कि हे बन्धु! तुम यहाँ खेलते हो, वहाँ कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कण्ठ मे डाल गया है। यह सुनते ही शृंगी ऋषि के नेत्र लाल हो गये और दाँत पीस कर थर २ काँपने लगे, फिर तो क्रोध कर कहने लगे कि इस कालयुग मे राजा लोग बड़े अभिमानी उपजे हैं, जो कि धन के मद से अन्धे हो गये हैं ऐसे दुःखदाइयों को मै उचित दण्ड दूंगा, प्रथम मै उसको शाप देत हूँ जिसे कि वह निश्चय पावेगा। ऐसा कह कर शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू मे ले राजा परीक्षित को यह श्राप दिया कि यही सर्प आज से सातवें दिन तुझे डसेगा। इस भाँति राजा को श्राप देकर, अपने बाप के पास जा, गले से साँप निकाल कर कहने लगा कि हे पिता! तुम अपनी देह सँभालो मैंने उस दुष्ट को श्राप दिया है जिसने आपके गले में मरा हुआ सर्प डाला था। यह वचन सुनते ही शमीक ऋषि ने सचेत हो, नयन उघार अपने ध्यान से विचार कर कहा, कि हे पुत्र! तैने यह क्या किया? राजा को श्राप क्यों दिया। उसके राज मे हम सुखी थे कोई पशु-पक्षी भी दुःखी न था, ऐसा धर्मराज्य था कि जिस में सिंह और गौ एक साथ रहते थे आपस मे कुछ भी न कहते थे, हे पुत्र! जिसके देश मे हम बसे हैं उनके हँसे से क्या हुआ? यदि मरा हुआ सर्प डाला था, तो उसे श्राप क्यों दिया? तनिक से दोष पर ऐसा श्राप? तैने बड़ा पाप किया, जो कुछ

भी विचार मन में नहीं किया, तैंने गुण को छोड अवगुण हो को लिया है। साधुजन को चाहिये कि सत्य, शील स्वभाव से रहें। आप कुछ न कहे औरों का सुन ले अवगुण तज दे, परन्तु तैंने उलटा किया। इतना कह शमीक ऋषि ने एक चेले को बुला के कहा कि हे वत्स! तुम राजा परीक्षित को जाके चेता दो कि तुम्हे शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है। इस बात से लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन कर सावधान तो हो जायगा। इतना वचन गुरु का सुन, चेला चला। वहाँ आया, जहाँ राजा बैठा शोच करता था। चेले ने आते ही कहा, हे महाराज! शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है कि आज के सातवें दिन वही तक्षक तुम्हें डसेगा। अतः अब तुम अपना वह कार्य करो जिससे इस कर्म की फाँसी से छूटो। यह सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो श्राप दिया। क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोकसागर में पड़ा था, सो आज उन्होंने निकालकर बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ, तब राजा ने आप तो वैराग्य लिया और निज पुत्र जनमेजय को बुला कर राज्यपाट सब देकर कहा कि बेटा! गो ब्राह्मण की रक्षा कीजिये और प्रजा को सुख दीजिये। इतना कह आप रनिवास में आकर देखा कि यहाँ सभी रानी उदास बैठी हैं। राजा को देखते ही रानियाँ पावों पर गिर रो रोकर कहने लगीं कि हे महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला सह न सकेंगी। इससे तुम्हारे साथ ही मैं जान दे दें तो भला है। यह सुन कर राजा बोले कि सुनो, स्त्री को उचित है कि अपने पति का धर्म रहे सो करे। उत्तम काज में न

म डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो आप योग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिना रोये न रहा। यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगीऋषि के शाप से मरने को गंगा-तीर आ बैठा है तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर नारद, विश्वामित्र, वामदेव जमदग्नि, आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहां आये, और आसन बिछाय पाँति पाँति में बैठ गये। फिर अपने २ शास्त्र को विचार कर अनेक अनेक भांति के धर्म राजा को सुनाने लगे। इतने में अन्तर्यामी राजा की श्रद्धा देख पोथी काँख में लिये, दिगम्बर भेष श्रीशुकदेवजी भी वहाँ आय पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि वहां थे सबके सब उठ खड़े हुए। तब राजा परीक्षित भी खड़ा हो हाथ बांध विनती कर, कहने लगा कि हे कृपानिधान! आपने मुझ पर बड़ी दया की जो इस समय मेरी सुध ली। राजा की इतनी बात सुन कर तब शुकदेव मुनि बैठे। तदनन्तर राजा ऋषियों से कहने लगा कि हे महाराज! शुकदेव तो व्यास जी के बेटे और पराशर जी के पोते हैं। उनको देखकर आप बड़े २ मुनीश होके सो उठे सो तो उचित नहीं था? इसका क्या कारण है? सो कहो तो मेरे मन का सन्देह जाय। तब पराशर मुनि बोले कि हे राजन! जितने हम बड़े २ ऋषि हैं, केवल वयोवृद्ध हैं, परन्तु ज्ञान में शुक से छोटे हैं। इसलिये सब ने शुक का आदर किया है इस पर किसी ने न कहा कि ये तारण-तरण हैं। क्यों कि जब से जन्म लिया है, तब से ही उदासीन हो वनवास करते हैं। ... हे राजन! तेरा भी कोई बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदे

जी आये। हम सब से उत्तम धर्म कहेंगे। जिससे तू जन्ममरण से छूट भवसागर पार होगा। यह वचन सुन, राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी को दण्डवत कर, पूछा कि हे महाराज! मुझे सब धर्म समझाय के कहो, कि मैं किस रीति में कर्म के फन्दे से छूटूंगा? सात ही दिन में क्या करूँगा? मेरा अधर्म अपार है। अतः मैं कैसे भवसागर से पार होऊँगा? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो एक ही घड़ी के ध्यान से होती है। जैसे कि राजा खटवांग को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था, और उसने दो ही घडी में मुक्ति पाई थी तुझे तो सात दिन बहुत हैं। जो एक चित्त हो ध्यान करोगे तो अपने ही ज्ञान से स्वयं ही समझोगे कि धर्म क्या है? देह मे किसका वास है? कौन उसमे प्रकाश करता है? यह सुन राजा ने हर्ष से पूछा कि हे महाराज! सब धर्मों से उत्तम कौनसा धर्म है? सो कृपा कर कहो। तब शुकदेवजी बोले हे राजन्! जैसे सब धर्मों मे से वैष्णव धर्म बड़ा है, वैसे ही पुराणो मे श्रीमद्भागवत है। जहां हरिभक्त इस कथा को सुनाते हैं, वहां पर सब तीर्थ और सब धर्म आते हैं, श्रीमद्भागवत के समान कोई पुराण नहीं है। इस कारण मैं तुझे बारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हूँ। जो कि व्यास मुनि ने मुझे पढाया है। तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन। इतना कह श्रीशुकदेव जी प्रेम से कथा सुनाने लगे और राजा परीक्षित प्रेम से सुनने लगे।

(२)

श्री कृष्ण-जन्म

कंस तो अनीति से मथुरा में राज्य करने लगा और उग्रसेन दुख भोगने लगा। देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब ब्याहने योग्य हुई, तब देवकने कंस से कहा कि यह लड़की किसको दूँ? वह बोला कि शूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलवाय शुभलग्न ठहराय शूरसेन के घर टीका भेज दिया तब तो शूरसेन ने भी बड़ी धूमधाम से बरात सजाय, सब देश के नरेशों को साथ ले मथुरापुरी में वसुदेव को ब्याहने आये। जब बरात नगर के निकट आई तब उग्रसेन, देवक और कंस अपना दल साथ ले, आगे बढ़ बरात नगर में ले [illegible] अति आदर सन्मान से अगौनी कर जनवासा दिया, [illegible] खिलाय पिलाय सब बरातियों को कन्यादान दिया। [illegible] पन्द्रह सहस्र १५००० घोड़े, चारसौ ४०० मैं[illegible] हाथी अठारह सौ १८०० रथ दो सौ दास व दासी, [illegible] थालों में उत्तम वस्त्र और रत्न जटित [illegible] सब बरातियों को भी अलंकार समेत [illegible] पहुँचाने चले। उसी समय आकाशवाणी [illegible] पहुँचाने चला है उसका आठवाँ लड़का [illegible], और उसके हाथ से तेरी मृत्यु होगी। यह सुनते ही [illegible] बैठा और क्रोधकर देवकी का [illegible] लिया खड्ग हाथ में ले दाँत

पीस २ कर कहने लगा कि जिस पेड को जड ही से उखाड देंगे उसमें फल कैसे लगेगा ? इससे अब इसी को मारूँ तब निर्भय हो राज्य करूं। यह देख वसुदेव मन मे कहने लगे कि इस मूर्ख ने मुझे बडा संताप दिया। पुण्य पाप कुछ नहीं जानता है। जो अब क्रोध करता हूं तो काज बिगड़ेगा इससे इस मे क्षमा करना ही योग्य है। कहा है कि :—

चौ०—वैरी जब खैंचे तरवार। करे साधु तिसकी मनुहार॥
समुझ मूढ सोइ पछिताय। जैसे पानी आग बुझाय॥

यह सोच समझ कर वसुदेव कंस के सामने जा हाथ जोड़कर विनती कर कहने लगे कि पृथ्वीनाथ! तुमसा बली संसार मे कोई नहीं है, सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र प्रहार करना अतीव अनुचित है। सो बहिन के मारने से महापाप होता है। तिस पर मनुष्य तब अधर्म करे जो जाने कि मैं कभी न मरूँगा। इस संसार की यही रीति है इधर जन्मा उधर मरा। कोई करोडो यत्नो से पाप व पुण्य कर इस देह को पोवे, पर यह अपनी कभी न होयगी। और धन, जोबन, राज्य भी कोई कभी काम न आवेगा, इससे मेरा कहा मान लीजिये और अपनी अबला अधीन बहिन को छोड दीजिये। इतना सुन के भी वह अपना काल जान घबड़ा कर और झुँझलाया। तब वसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि- लिये हुए अपने हठकी टेक पर है। जिस तरह से हो इसके हाथ से यह बचे सो उपाय करना चाहिये, ऐसा विचार मन कहने लगे कि अब तो इससे यों कहके देवकी को बचा-

जो पुत्र मेरे होगा, सो तुम्हें दूंगा। पीछे किसने देखा है कि क्या होगा? कहीं लड़का ही न होय या यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टले फिर समझा जायगा। इस भांति मन में ठान वसुदेव ने इससे कहा कि महाराज! तुम्हारी मृत्यु तो इसके पुत्र के हाथ से होगी। अतः मैंने एक बात ठहराई है कि, देवकी के जितने लड़के होगे, मैं तुम्हे दे दूंगा। यह वचन मैंने तुमको दिया। ऐसी बात जब वसुदेव ने कही तब ठीक बात समझ कर कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा कि हे वसुदेव! तुमने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह विदाई कर दी और वे सब लोग अपने घर चले गये। कुछ दिन मथुरा में रहते हो गया। दैव इच्छा से पहिला ही पुत्र देवकी को हुआ, वसुदेव उसे ले कंस के पास गये और रोता हुआ लड़का धर दिया। देखते ही कंस ने कहा कि वसुदेव! तुम बड़े सत्यवादी हो, सो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने ज़रा भी कपट नहीं किया, निरमोही हो अपना पुत्र दे दिया, इससे मुझे कुछ डर नहीं है। यह बालक मैंने तुम्हे दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत कर वसुदेवजी तो अपने घर चले आये। उसी समय नारदमुनिजी ने आयके कंससे कहा-राजन! तुमने यह क्या किया? जो बालक उलटा फेर दिया। क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव देवकी की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंचि गिनवाई। जब सब तरह से आठ ही आठ गिनती में आई, तब डर कर कंस ने लड़के समेत

वसुदेव जी को बुला भेजा। नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये कंस ने वसुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे ही जब पुत्र होय, तब वसुदेव ले आवैं और कंस उसे मार डालैं। इसी रीति से कंस ने छ बालक मारे तब सातवें गर्भ में शेषरूप भगवान् ने आकर वास किया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा कि महाराज! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया इसका ब्यौरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि राजन्! नारद मुनि जी ने तो अच्छा विचारा कि यदि यह अधिक पाप करेगा, तो श्रीभगवान तुरन्त ही प्रगट होवेंगे।

एक दिन राजा अपनी सभा मे आकर बैठा। आते ही जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा कि सुनते हैं कि सब देवता पृथ्वी पर आये हैं। उन्हीं मे कृष्ण भी अवतार लेगा। यह भेद मुझ से नारद मुनि समझाय करके कह गये हैं। इससे अब उचित है कि तुम जाकर यदुवंशियों का ऐसा नाश करो, जो एक भी जीता न बचे। यह आज्ञा पा सब दण्डवत् कर चले और नगर मे आय ढूँढ २ पकड़ २ कर बाँधने और मारने लगे। जहाँ भी खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते फिरते, जिसे पाया उसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाकर जला २ डुबो-पटक २ सबको मार डालैं। इसी रीति से छोटे बड़े भयावने, भाँति २ के भेष बनाये, नगर २ गाँव २ गली २ खोज २ मारने लगे। तब तो यदुवंशी दुःख पाय देश छोड़ २ जी ले २ भागने लगे। इसी के भय से वसुदेव की और जो स्त्रियाँ थीं, वे रोहिणी समेत ७ से गोकुल में जहाँ वसुदेव जी के परम मित्र नन्दजी रहते थे,

तो यो प्रगटे। अब जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ मे आये, तब माया ने नन्द की नारी यशोदा के घर जन्म लेने का निश्चय किया। एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गई वहां संयोग से यशोदा भी आ निकली, आपस मे दुःख की चरचा चली। निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रखूंगी अपना तुझे दूंगी। ऐसे वचन दे अपने २ घर आईं। जब कंस ने जाना कि देवकी के यहां आठवें पुत्र के जन्म की आशा है, तब वसुदेव का घर जाय घेरा, चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी, और वसुदेव को बुलाकर कहा कि अब तुम मुझ से कपट मत करना, अपना लड़का लाकर दे जाना। तब तो मैं ने तुम्हारा कहना मान लिया था। ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेड़ी और हथकड़ी पहिनाय, एक कोठे मे बन्द कर, ताले दे, निज मन्दिर मे आ, मारे डर के उपासा ही सो रहा। फिर भोर होते ही वहां गया जहां बसुदेव देवकी थे। कहने लगा मार तो डालूं पर अपयश से डरता हूँ। क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को मारना योग्य नहीं है। इसके पुत्र को ही मारूंगा। यों कह कर बाहर आया। गज, सिंह, श्वान और जो अपने बडे योधा थे, वहां चौकसी को रक्खे। आप भी नित्य चौकसी कर आवे पर एक पल भी उसे कल न पड़े। उसे आठ पहर चौसठ घडी कृष्ण रूप काल हो सृष्ट (दृष्टि आवे। जिसके भय से भयभीत हो रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी रात दिन महा कष्ट में पड़े श्रीकृष्ण ही को मानते थे कि इसी बीच भगवान् ने आय उन्हें स्वप्न दिया। स्वप्न मे यह कह

मन का सोच दूर किया कि हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्त मेटते हैं। तुम अब मत पछिताओ। यह सुन वसुदेव देवकी जा पड़े। उतने ही मे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता, अपने विमा अधर मे छोड़, अलख रूप बनाकर वसुदेव जी के गृह मे आये प्रथम प्रणाम कर हाथ जोड़ कर वेद मन्त्रों से गर्भ स्तुति कर लगे। उस समय उनको तो किसी ने न देखा, पर वेद की ध्वनि सब ने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे मे रह गये अब वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान् शीघ्र ही हमारी पीर हरेंगे।

जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने को हुये, उस काल मे सब ही के जी मे ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख तो नाम को भी न रहा। हर्ष से बन उपवन हरे २ हो फूलने फलने, नदी नाले सरोवर जल भरने, वृक्षों पर भाँति २ के पक्षी कलोलें करने, नगर २ गाव २ घर २ मगलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशा के दिगपाल हर्षने, बादल ब्रह्ममण्डल पर घिरने, देवता गन्धर्व, चारण, ढोल, दमामे, भेरी, बजा २ गुण गान करने लगे। एक ओर उर्वसी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं। ऐसे समय भादों बदी अष्टमी, बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। वह मेघवरण चन्द्रमुख कमलनैन, पीताम्बर काछे, मुकुट धरे, बैजन्ती माला और रत्न जड़ित आभूषण पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शख, चक्र, गदा, पद्म लिये, वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। उनको देखते ही अचम्भित हो, उन दोनों ने ज्ञान मे बिचारा, तो आदि पुरुष को जाना। तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा कि हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आपने दर्शन दिये

और जन्म मरण का निबेड़ा किया। इतना कह पहली कथा सब सुनाई कि जैसे २ कंस ने दु:ख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि अब तुम किसी बात की चिन्ता मन में मत करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दु:ख को दूर करने ही को अवतार लिया है। परन्तु इस समय तुम मुझे गोकुल पहुंचा दो। वहां इसी समय यशोदा के एक लडकी हुई है, उसे कंस को लाकर दे दो। अपने वहां जाने का कारण कहता हूँ सुनो।

दोहा—नन्द यशोदा तप कर्यो, मोंही सों मन लाय।
देख्यो चाहत बाल सुख, रहौं कछुक दिन जाय॥

फिर कंस को मार आय मिलूंगा, तुम अपने मन में धीरज धरो। ऐसे वसुदेव देवकी को समझाय, श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे।

(२)

श्रीकृष्ण का नामकरण और बाललीला

श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजन्! एक दिन वसुदेवजी ने गर्ग मुनि को जो बड़े ज्योतिषी और यदुवंशियों के पुरोहित थे, उन्हे बुलाकर कहा कि तुम गोकुल जाय लड़के का नाम रख आओ।

तहाँ नन्दजी के पुत्र हुआ है, सो तुम्हे भी बुलाय गये हैं। सुनते ही गर्गमुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुँचे। उसी समय किसी ने नन्दजी से आकर कहा कि यदुवंशियों के पुरोहित गर्गमुनि जी आते हैं। यह सुनकर नन्दजी

ग्वाल बाल संग कर भेंट ले उठ धाये और पाटम्बर पांवडे डालते बाजे गाजे से ले आये, पूजा कर आसन पर बैठा के, चरणामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड के कहने लगे कि हे महाराज! हमारे बड़े भाग हैं, जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं। एक रोहिणी से और एक हमारे। सो आप कृपा कर उनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले कि ऐसे नाम रखना उचित नहीं। क्योंकि जो यह बात फैली कि गर्ग मुनि गोकुल मे लडको का नाम धरने गये हैं। यदि कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्र को वासुदेव के मित्र के यहाँ कोई पहुँचाय आया है। इसीलिए गर्ग पुरोहित गया है। सो समझ कर पकड़ मँगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपाय लगावे। इससे तुम कुछ फैलाव मत करो. चुपचाप घरमें नाम धरवा लो। नन्दजी बोले कि गर्ग जी! तुमने सच कहा है। इतना कह घर के भीतर ले जाय कर बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नन्द जी से दोनों की जन्मतिथि और समय पूछ, लग्न साध, नाम ठहराया कि सुनो नन्दजी! वसुदेव की नारि रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होगये–संकर्षण, रेवती-रमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दी-भेदन, हलधर और बलवीर इत्यादि। कृष्ण रूप जो तुम्हारा लड़का है, उसके नाम तो अनगिनत हैं। परन्तु यह किसी समय वसुदेव के यहाँ जन्मा है, इससे इसका वासुदेव नाम हुआ। किन्तु मेरे विचार में आता है ये दोनो बालक तुम्हारे, चारो युग में, जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं। नन्दजी बोले कि इनका गुण कहो। तब गर्गमुनि ने उत्तर दिया कि ये दूसरे विधाता हैं। इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती है परन्तु मैं यह जानता हूँ कि कंस को

मार कर भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्गमुनि चुपचाप से चले गये और वसुदेव से मिल सब समाचार कहे। ये दोनों बालक गोकुल में दिन २ बढ़ने लगे और बाल लीला करके नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीली पीली झँगुली पहिने, माथे पर छोटी २ लटुरियाँ बिखरी हुई, ताईत गण्डे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये आंगन के बीच खेलते भये। जब घुटनों चल २ गिर २ पड़ें और तोतली २ बातें करें, तब रोहिणी और यशोदा पीछे २ लगी फिरें। इसीलिये कि लड़के कहीं किसी से डर या ठोकर खा न गिरें। जब छोटे २ बछड़ों और बछिया की पूछ पकड़ २ उठें और गिर २ पड़ें तब यशोदा रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय, दूध पिलाय, भाँति २ के लाड़ लड़ावें। जब श्रीकृष्ण बड़े भये, तो सब ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

सूने घर में ढूँढ़ें जाय। जो पावें सो देयँ लुटाय ॥

जिन्हें घर में सोते पावें उनकी धरी ढकी दहेडी उठा लावें जहां छीके पर रक्खा देखें, तहा पीढ़ा पर पटड़ा पटड़े पै ऊखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें। कुछ खावें कुछ लुटावें और बचे भये लुटाय दे। ऐसे गोपियों के घर २ नित चोरी कर आवें। एक दिन सब ने सलाह किया कि प्रथम गृह में मोहन को आने दिया जाय। घर के भीतर पैठ, चाहें कि माखन दही चुरावें, त्योंही जाय उन्हें पकड़ कर कहें कि "दिन दिन आते थे निशि भोर, अब कहां जाओगे माखन चोर!" यों कह कर तब सब गोपी मिल, कन्हैया को ले, यशोदा पास उलाहना देने चलीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किय

उसके लड़के को हाथ से पकड़ा दिया और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे सब चलीं २ नन्दरानी के निकट आय, पाओ पड बोलीं कि जो तुम बिलग न मानो, तो हम कहैं जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है।

दो०—दूध दुह्यो माखन मह्यो, बचे नहीं ब्रज मांझ।
ऐसी चोरी करतु हैं, फिरत भोर अरु सांझ॥

जहाँ कहीं धरा ढका पाते हैं वहां से निधडक उठा लाते हैं कुछ खाते हैं और कुछ लुटाते हैं। जो कोई इनके मुख में दही लगावत है, उसे उलट कर कहते हैं कि तूने ही तो लगाया है इस भांति नित चोरी कर आते थे। परन्तु आज हमने पकड़ पाया, सो तुम्हें दिखाने लाई हैं। यशोदा बोलीं कि हे बार! तुम किसका लड़का पकड़ लाई। कल से तो घर के बाहर भी नहीं निकला कुंवर कन्हाई, ऐसा ही सच बोलती हो। यह सुन और अपना ही बालक हाथ में देख वे सब हंस कर लजाय गईं। तब यशोदाजी ने कृष्ण को बुलाय के कहा कि हे पुत्र! तुम किसी के यहाँ मत जाओ, जो जो चाहिये सो घर में से लेके खाओ।

कभी दोहनी बछड़ा पकड़ाती हैं कभी घर की टहल कराती हैं। मुझे द्वारपर रखवाली को बैठाय अपने काज को जाती हैं। फिर झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यह सुनके गोपियां हरिका मुख देख देख मुसकरा कर चली गईं। एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग बाखल में खेलते थे कि कान्ह ने मिट्टी खाई। एक सखा ने यशोदा से आके लगा दिया। वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई। माता को रिस भरी आती देख मुं

पोंछ कर खड़े हो गये। यशोदा ने जाते ही कहा कि क्योंरे तूने माटी क्यों खाई ? तब कृष्ण डरते कांपते बोले कि मां तुझसे किसने कही। वह बोलीं कि सखाने। तब मोहन ने कांप कर सखा से पूछा कि क्योंरे मैंने मट्टी कब खाई ? तब वह भय कर बोला कि भैया मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूँगा। ज्योंही कान्ह सखा से बतलाने लगे त्योंही यशोदा ने उन्हें आ पकड़ा। कृष्ण कहने लगे कि मैया! तू रिसाय मत, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते हैं ? तब वह बोलीं कि मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती। जो तू सच्चा है, तो अपना मुख दिखा। ज्योंही श्रीकृष्ण ने मुख खोला त्योंही उसमे तीनों लोक दृष्टि आये। तब यशोदा को ज्ञान हुआ और मन मे कहने लगीं कि मैं बड़ी मूरख हूँ जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले कि हे राजन्! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना तब हरिने अपनी माया फैलाई। इतने मे मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आई।

एक दिन दही मथने की बिरियां जान भोरही नन्दरानी उठीं। सब, गोपियों को भी जगा के बुलाया। वे भी आय, घर झाड़ बुहार, लीप पोत, अपनी २ मथनियां ले इडुये पर रख, चौकी बिछा, नेती और रई मँगाय, टटकी टटकी दहेंड़ियां बिछा २ रामकृष्ण के लिये बिलोवने बैठीं! उस समय नन्दके घर मे ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो। इतने मे कृष्ण जागे, तो रो २ मां २ कह कर [illegible] लगे। जब उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आपही [illegible]

के निकट आये, और आँखें डबडबाय, सामने ही ठुमुक २ तुतुलाय कहने लगे कि माँ मैंने तुझे के बेर बुलाया किन्तु तू मुझे कलेऊ देने न आई, क्या तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा ? इतना कह मचल पड़े, फिर तो रई चरुये निकाल दोनों हाथ डाल, माखन काढ फेंकने, अंग में लथेड़ने और पाँव पटक २ आंचल खैंच खैंच रोने लगे। तब नन्दरानी घबराय और झुँझलाय के बोलीं बेटा ! यह क्या चाल निकाली है।

चल उठ तुझे कलेऊ दूं। कृष्ण कहे अब मैं नहिं लूं ॥
पहिले क्यों नहिं दीना मां। अब तो मेरी लेहै बला ॥

निदान यशोदा ने फुसलाय प्यार से मुंह चूम गोद में उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हँस हँस खाते थे, तथा नन्द महर आंचल की ओट किये लिये रहीं थीं। ऐसा इसलिये किया कि किसी की दीठ न लगे। इसी बीच में एक गोपी ने आकर कहा कि तुम तो यहां बैठी हो, यहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ कर धाईं। और वहां जाके दूध बचाया। यहां कान्ह ने दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले ग्वालों में दौड़ आये। एक ऊखल औंधा धरा पाया, उस पर जा बैठ और चारों ओर सखाओं को बैठाय, आपस में हंस हंस कर बांट बांट कर माखन खाने लगे। इतने में यशोदा दूध उतार आगके देखें तो आँगन में दही और निचार में दही मही की कीच हो रही है। तत्सोच समझ के हाथ में छड़ी ले निकलीं और ढूँढती २ वहां आईं जहां श्रीकृष्ण मण्डली बनाये माखन खाय खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से जो

कर धरा, त्यों हरि मां को देखते ही रोकर हाहा खाय कहने लगे कि मैया गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूं हूं, मुझे छोड दे। ऐसे दीन वचन सुन, यशोदा हस कर हाथ से छडी छोड और आनन्द में मग्न हो रिस के मिस कण्ठ लगाय घर लाय के कृष्ण को ऊखल से बाँधने लगीं। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाधे वही छोटी हो, तब यशोदा ने सब घर की रस्सियां मंगाईं, तौ भी बाधे न बधे। निदान माता को दुखित जान, आपही बन्धन मे आगये। तब नन्दरानी बांध के गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगीं।

श्रीकृष्णचन्द्र को बँधे बँधे पूर्वजन्म की सुधि आई कि कुबेर के बेटे को नारद ने शाप दिया है, उनका उद्धार करना चाहिये। यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा कि महाराज! कुबेर के पुत्रों को नारद मुनि ने क्यों शाप दिया था। सो मुझे समझा कर कहो। शुकदेव मुनि बोले कि नल कुबेर के दो लडके कैलाश मे रहते थे। वह शिवजी की सेवा करके अति धनवान हुए। इतने ही मे वहाँ नारद मुनि आ निकले। उन्होने नारद का आदर नहीं किया। यह देख नारदजी मन मे कहने लगे कि उनको धन का गर्व हुआ है, इसी से मदमाते हो, काम क्रोध को सुखकर जानते हैं। निर्धन मनुष्य को अहंकार नहीं होता है। परन्तु धनवान को धर्म अधर्म का विचार नहीं रहता यह मूरख झूठी देही से नेह कर सम्पति व कुटुम्ब देख के भूले हैं। साधुजन न धनमद मन मे लावे, न सम्पति विपति में दुख माने। इतना कह नारद मुनि ने शाप दिया कि इस से तुम गोकुल मे जाय वृक्ष हो। जब श्रीकृष्ण जी अवतार

तब तुम्हे मुक्ति देंगे। नारद मुनि के इस शाप से वे गोकुल में जाय वृक्ष हुए। यमलार्जुन नाम हुआ। इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले कि हे राजन ! इसी बात का सुरत कर श्रीकृष्ण ओखली को घसीटते २ वहाँ ले गये, जहाँ यमलार्जुन के पेड़ थे। वहाँ जाते ही उन दोनो वृक्षों के बीच ओखली को आड़ा डाल एक ऐसा झटका मारा कि वे दोनों जड़से उखड पड़े। और उन मे से दो पुरुष अति सुन्दर निकल हाथ जोड़ स्तुति कर कहने लगे कि हे नाथ! तुम विन हम ऐसे महापापियों की सुधि कौन ले सकता है। तब श्रीकृष्ण बोले कि सुनो, नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल मे मुक्ति दी। उन्हीं की कृपा से तुमने मुझे पाया है। अब जो तुम्हारे मन में हो वर माँगो। यमलार्जुन बोले कि हे दीनानाथ! यह नारद जी की ही कृपा है जो आपके चरण परसे और दर्शन किये। अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। परन्तु इतना अवश्य दीजिये कि सदा तुम्हारी भक्ति हृदय मे रहे। यह हँसकर वर दे श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हे विदा किया।

जब वे दोनो तरु गिरे, तब उनका शब्द सुन नन्दरानी घबरा कर दौडी वहाँ आई जहाँ कृष्ण को ओखली मे बाँध गई थी। उन के पीछे से सब गोपी ग्वाल भी वहीं आये। जब कृष्ण को वहाँ न पाया, तब यशोदा व्याकुल हो मोहन २ पुकारती हुई चली जा रही थीं कि हाय ! क्या हुआ कहाँ चला गया। अरे किसी ने मेरा कुँवर कन्हाई देखा है ? इतने मे सामने से आय एक गोपी बोली कि व्रजरानी ! जहाँ दो पेड़ गिरे हैं वहाँ मुरारी खेल रहे हैं। यह सुन जब आगे जाय देखें तो

सब वृक्ष उखड़े पड़े हैं और कृष्ण उनके बीच ओखली मे बंधे सुकडे बेठे हैं। जाते ही नन्दमहरि ने ऊखल से कान्ह को खोल, रोकर गले लगा लिया और गोपियां डरा जान चुटकी ताली दे २ हँसाने लगीं। तब नन्द उपनन्द आपस मे कहने लगे कि जुगान-जुग के जमे हुए रूख कैसे उखड़ पड़े यह अचम्भा जी मे आता है । इन का कुछ भी भेद समझ मे नहीं आता है । इतना सुन के एक लड़के ने पेड गिरने का व्योरा ज्यो का त्यो कहा परन्तु किसी के जी मे न आया। तब एक बोला कि ये बालक इस भेद को क्या समझेंगे । दूसरे ने कहा कदाचित् यही हो, हरि की गति कौन जाने । ऐसी अनेक भांति की बात कर, श्रीकृष्ण को लिये, सब आनन्द से गोकुल मे आये । तब नन्द जी ने बहुत दान पुण्य किया । कुछ दिन बाद श्रीकृष्ण का जन्म दिन आया तब, यशोदा रानी ने सब कुटुम्ब को न्योता बुलाया और मंगलाचार कर बरष गाठ बांधी । जब सब मिल जेवने बैठे तब नन्दराय बोले कि सुनो भाइयो! अब इस गोकुल में रहना कैसे बनेगा ? क्योकि दिन २ बडे उपद्रव होने लगे। अब कहीं ऐसी ठौर चले जावें जहां तृण जल का तो सुख पावे। उपनन्द बोले कि वृ दावन जाय के बसिये वहा आनन्द से रहिये । यह वचन सुन नन्द जी ने सब को खिलाय पान दे बैठाया। उसी समय एक ज्योतिषी को बुलाय यात्रा का मुहूर्त पूछा । तब उस ने विचार कर कहा कि इस दिशा की यात्रा को कल दिन उत्तम है । बांए योगिनी, पीछे दिशाशूल और सन्मुख चन्द्रमा हैं । आप निसन्देह भोर ही प्र-कीजिये । यह सुन उस समय तो सब गोपी ग्वाल अपने

गये, पर सवेरे ही अपनी २ वस्तु गाडी में लाद आ इकट्ठे हुए तब कुटुम्ब समेत नन्द जी भी साथ लिये हीं और चले २ नदी के पार उतर सांझ समय वृन्दावन जा पहुचे । वृन्दा देवी को मनाय, वृन्दावन वास किया । वहां सब सुख चैन से रहने लगे । जब श्रीकृष्ण पांच बरस के हुए, तब मां से कहने लगे कि मैं बछड़े चराने जाऊंगा, तू बलदाऊ से कह दे कि मुझे बन में अकेला न छोड़। तब वह बोलीं कि हे पुत्र ! बछड़े चरवाने वाले तुम्हारे दास बहुत हैं, तुम मेरे नैन के आगे से दूर न हो । तब कान्ह बोले कि जो मै बन मे खेलने न जाऊंगा तो खाने को नहीं खाऊंगा, नहीं तो मुझे जाने दे । यह सुन यशोदा ने ग्वाल बालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सौंपकर कहा कि तुम बछड़े चरवाने दूर मत जाइयो और सांझ होते ही दोनों को संग ले घर चले आइयो । बन में इन्हे अकेले मत छोड़ियो, साथ ही साथ रहियो । क्योंकि तुम इन के रखवाले हो । ऐसे कह कलेऊ दे राम कृष्ण को उन के संग कर दिया । वे जमुना के तीर जाय बछड़े चराने और ग्वालों मे खेलने लगे । इतने ही मे कंस का पठाया कपट रूप किये बच्छासुर आया उस देखते ही सब बछड़े डर कर जिधर तिधर भागे । तब श्रीकृष्ण ने बलदेव जी को सैन से बताया कि हे भाई ! यह कोई राक्षस आया है। आगे वह चरता २ घात करने ज्यों ही निकट पहुंचा त्यों ही श्री कृष्ण ने पिछला पांव पकड़ फिराय कर ऐसा पटका कि उसका जी घट से निकल सटका।

बच्छासुर का मारना सुन कंस ने बकासुर को भेजा। ... आय, अपनी घात लगाये यमुना तट पर

समान बैठा। उसे देख मारे भय के ग्वाल-बाल कृष्ण से कहने लगे कि भैया यह तो कोई राक्षस बगुला बन के आया है। इसके हाथ से कैसे बचेंगे? ये सब तो इधर कृष्ण से यों कहते थे और उधर वह जी में विचारता था कि आज इसे बिना मारे न जाऊँगा। इतने मे ज्यों ही श्रीकृष्ण उसके निकट गये त्यों ही उसने इन्हें चोंच मे उठाय, मुँह मे बन्द कर लिया। तब तो ग्वाल-बाल व्याकुल हो चारों ओर देख रो २ पुकार २ कहने लगे कि हाय २ यहां तो हलधर भी नहीं हैं, हम यशोदा से जाय के क्या कहेंगे? इनको अति दुःखित देख श्रीकृष्ण ऐसे गर्म हुए कि वह मुँह मे रख न सका, ज्यों ही उसने इन्हें उगला त्यों ही इन्होंने उसकी चोंच पकड़ ओठ पाँव तले दबाय चीर डाला। सन्ध्या समय बछेड़ घेर सखाओं को साथ ले हँसते खेलते घर आये।

एक दिन प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्ण बछड़े चरावने बन को चले। उनके साथ सब ग्वलवाल भी अपने घर से छाक ले २ संग हो लिये। और बन के फल फूलों के गहने बनाय, उन्हें पहन कर खेलने लगे, पशु और पक्षियों की बोली बोल २ भाँति २ के कुतूहल कर नाचने लगे।

इतने ही मे कंस का पठाया अघासुर नामक राक्षस आया। वह आते ही एक बड़ा अजगर हो मुँह पसार बैठा। इधर सब सखा समेत श्रीकृष्ण भी खेलते २ वहीं जा निकले, वहाँ वह घात लगाये मुह बाये बैठा था। दूर ही से उसे देख ग्वालबाल आपस मे कहने लगे कि भाई! यह तो कोई बड़ा पहाड़ है कि जिसकी कन्दरा इतनी बड़ी है। ऐसे कहते २ और बछड़े चरते छोड़, उसके पा

पहुँचे। तब एक लडका उसका मुख खुला देख बोला कि भाई! यह तो कोई अति भयावनी गुफा है। इसके भीतर न जाँयगे। फिर तोख नामक सखा बोला कि चलो इसमे धँस चलें, कृष्ण के साथ रहते हम क्यों डरे। यदि कोई असुर होगा, तो बकासुर की रीति से मारा जायगा।

यहाँ सब सखा खड़े बाते करते ही थे कि उसने एक ऐसी लम्बी साँस खैंची कि बछडा समेत सब ग्वालबाल उडके उसके मुख मे जा पड़े। वहाँ बिषभरी तप्ती २ भाप ज्यो लगी त्यों व्याकुल हो बछडे राँभने और सखा पुकारने लगे कि हे कृष्ण प्यारे! बेग सुध लो, नहीं तो सब जल मरते हैं। उनकी पुकार सुनते ही आतुर हो, श्रीकृष्ण भी उसके मुख मे पड गये। उसने प्रसन्न हो मुँह मूँद लिया, वहाँ श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उसका पेट फट गया। सब बछरू और ग्वालबाल निकल पड़े। उस समय आनन्द मानकर देवताओ ने फूल अमृत बरसाय सब की तपन हर ली। तब ग्वालबाल श्रीकृष्ण से कहने लगे कि भैया! असुर को मार आज तूने भले बचाये नहीं तो सब मर चुके थे।

ऐसे अघासुर को मार श्रीकृष्णचन्द्र बछड़े घेर, सखाओं को साथ ले, आगे चले। कुछ दूर जाय कदम की छाँह मे खडे हो, बंशी बजाय, सब ग्वालबालो को बुलाय के कहा कि भैया! यह भला ठौर है। इसे छोड आगे कहाँ जांय। यहीं बैठ हम लोग छाक खाँय। यह सुनते ही उन्होंने बछड़े तो चरने को छोड दिये

आक, ढाक, बड़, कदम, कबल के पात लाय, पत्तल दोने

बनाय झाड बुहार श्री कृष्ण के चारों ओर पाती बाँध बैठ गये। फिर अपनी २ छाक खोल २ आपस में परोसने लगे।

जब सब वस्तु परोस चुके तब श्री कृष्णचन्द्र ने सब के बीच में खड़े हो, पहले आप कौर उठाये, फिर खाने की आज्ञा दी। तब वे सब खाने लगे। उन मे मोर मुकुट धरे वनमाला पहिरे, लकुट लिये, त्रिभंगी छवि किये, पीत पट ओढ़े हुए २ श्रीकृष्ण भी अपनी छाक में से सब को खिलाते थे। जब एक २ पतवारे में से उठाय २ चाख चाख खट्टे, मीठे, तीते, चरपरे का स्वाद कहते जाते थे। उस समय मण्डली मे ऐसे सुहावने लगते थे कि जैसे तारों मे चन्द्रमा। उस समय ब्रह्मा आदि सब देवता अपने २ विमानो मे बैठ, आकाश से ग्वाल मण्डली का सुख देख रहे थे। उनमे से ब्रह्मा आय सब के बछड़े चुराय ले गये। यहां सब ग्वाल वालों ने खाते २ चिन्ता कर श्रीकृष्ण से कहा कि हे भैय! हम तो निश्चिन्ताई से बैठे खा रहे हैं, न जाने बछड़े कहा निकल गये होयंगे?

तब बालन सों कहत कन्हाई। तुम सब जेंवत रहियो भाई॥
जिन कोउ उठै करे ओसेर। सब के बछरा ल्याऊं घेर॥

ऐसे वह, कुछ दूर वन मे जाय, जब यह जाना कि यहां से बछड़े ब्रह्मा हर ले गये, तब श्रीकृष्ण वैसे ही बछड़े और बना ले आये। जब यहां आयके देखा कि ग्वालबालों को भी उठाय ले गये है। फिर इन्होने ग्वालबाल भी जैस तैसे ही बनाये और साझ हुई जान सब को साथ ले, वृन्दावन आये। सब ग्वालबाल और बछड़े अपने २ घर गये। परन्तु किसी ने यह भेद न जाना कि हमारे बालक और बछड़े नहीं है, वरन् और दिन दिन उनसे

बढ़ती ही चली गई । इतनी कथा सुनाय,श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! ब्रह्मा वहां से ग्वालबाल बछडे को ले जाय, एक परवत की कन्दरा मे धर,उसके मूह पर पत्थर की शिला धर भूल गये ! और वहां श्रीकृष्ण नित्य नई २ लीला करते थे। इसमे एक वर्ष बीत गया । तब ब्रह्मा को सुध आई तो मनमे कहने लगे कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ, परन्तु नर का एक वर्ष हो गया और इससे अब चल कर देखना चाहिये कि ब्रज मे ग्वालबाल और बछडों के बिना क्या गति भई । यह विचार उठकर वहां आये जहां कन्दरा मे सब को बन्द कर गये थे शिला उठाय के देखा तो लडके और बछडे घोर निद्रा मे सोये पडे है । वहां से वृन्दाबन मे आये । बालक और बछरू सब ज्यों के त्यों अचरभे मे हो कहने लगे कि ग्वाल बछडे यहां कैसे आये ? या कृष्ण ने नये उपजाये, या मै भ्रम मे हू । इतना कह फिर कन्दरा को देखने गये । जितने मे देख कर आवै, उतने ही बीच मे श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसी माया करी कि जितने ग्वालबाल और बछडे थे सब चतुर्भुज हो गये और एक एक के आगे ब्रह्मा रुद्र इन्द्र हाथ जोडे खड़े हैं ।

यह देख देवता डर कर नैन मूद, थर थर कांपने लगे । अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है, सब का अश हर लिया और आप अकले ही रह गये । ऐसे कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जायँ ।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन ! जब श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तब ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ । ध्यान कर भगवान् के पास अति गिड़गिड़ाय कर

मे पड, विनती कर, हाथ बांध खडा हो कहने लगे कि हे नाथ ! तुमने बडी कृपा करी, जो मेरा गर्व दूर किया, इसी अंश से अन्धा हो गया था। ऐसी बुद्धि किसकी है ? जो विना तुम्हारी दया के तुम्हारे चरित्रों को जाने। तुम्हारी माया ने सब को मोह लिया है। ऐसा कौन है। जो तुम्हें मोहे ? तुम सबके कर्ता हो। तुम्हारे रोम रोम मे मुझ से अनेक ब्रह्मा पड़े हैं। मै किस गिनती में हू ? दीनदयाल ! अब अपराध क्षमा कीजिये, मेरा दोष चित्त मे न दीजिये।

इतना वचन सुन श्रीकृष्ण मुसकराये। तब ब्रह्मा ने सब ग्वालबाल और बछडे सोते के सोते ला दिये। फिर लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गये। जैसी मण्डली आगे थी, तैसी ही बन गई। मोह निद्रा मे बरस दिन बीता सो किसी ने न जाना। ज्यों ग्वालबालो की नींद गई त्यों कृष्ण बछरू घेर लाये। तब उनसे लडके बोले भैया ! तुम तो बछडे वेग ही लाये, हम सब भोजन करने भी न पाये। ऐसे आपस मे बतलाय, बछरू ले सब हसते-खेलते अपने घर आये।

(४)

ऋतु लीलाएं

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज ! अब मैं ऋतु बरनन करता हूँ। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जिस २ ऋतु में जिनर लीलाओं को करा है, वह कहता हूँ तुम चित्त देकर सुनो। प्रथम ग्रीषम ऋतु आई, जिसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया। धरती से आकाश तक तपाकर अग्नि समान किया। परन्तु श्री

बढ़ती ही चली गई। इतनी कथा सुनाय,श्री शुकदेव जी बोले हे महाराज ! ब्रह्मा वहां से ग्वालबाल बछड़े को ले जाय, परवत की कन्दरा में धर,उसके मूह पर पत्थर की शिला धर मूंद गये ! और वहां श्रीकृष्ण नित्य नई २ लीला करते थे। इसमें वर्ष बीत गया । तब ब्रह्मा को सुध आई तो मनमे कहने लगे कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ, परन्तु नर का एक वर्ष हो गया। इससे अब चल कर देखना चाहिये कि ब्रज मे ग्वालबाल और बछड़ों के बिना क्या गति भई । यह विचार उठकर वहां जहां कन्दरा मे सब को बन्द कर गये थे शिला उठाय के देखा तो लड़के और बछड़े घोर निद्रा मे सोये पडे है । वहां से वृन्दावन मे आये । बालक और बछरू सब ज्यों के त्यों देख अचम्भे मे हो कहने लगे कि ग्वाल बछड़े यहां कैसे आये ? या तो कृष्ण ने नये उपजाये, या मैं भ्रम मे हूं। इतना कह फिर कन्दरा को देखने गये । जितने मे देख कर आवै, उतने ही बीच में यहां श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसी माया करी कि जितने ग्वालबाल और बछड़े थे सब चतुर्भुज हो गये और एक एक के आगे ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि हाथ जोड़े खड़े हैं ।

यह देख देवता डर कर नैन मूद, थर थर कांपने लगे। तब अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है तब सब का अंश हर लिया और आप अकेले ही रह गये। ऐसे होगये कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जायँ ।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तब ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ। ज्ञान ध्यान कर भगवान् के पास अति गिड़गिड़ाय कर पाँवों

चमकती थी, पसीना मेह सा बरसता था। इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! वह ज्यों ही अकेला पाप बलराम जी को मारने को उद्यत हुआ, त्यों ही उन्होंने मारे घूसों के उसे मार गिराया।

जब प्रलम्ब को मार कर बलराम चले, उसी समय सामने से सखाओं समेत घनश्याम आय मिले और जो ग्वाल बन मे गाय चराते थे, वे भी कहते हुए कि, "दाऊ ने असुर मारा है," यह सुनते ही सब गौएं छोड, उधर देखने को गये। इधर गौएं चरती चरती डाभ-काश से निकल मूंज-बन में बढ़ गई। दोनों भाई वहां से आय देखें तो एक भी गौ नहीं है।

इतने में किसी सखा ने आय, हाथ जोड श्री कृष्ण से कहा कि हे महाराज ! गायें सब मूंज बन मे पैठ गई हैं उनके पीछे, ग्वालबाल न्यारे ही ढूंढते भटकते फिरते हैं। (इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण ने कदम पर चढ़ जो ऊंचे सुर से बंसी बजाई, सोई सुन ग्वालबाल और सब गाएं मूंज बन को फाडकर ऐसे आन मिलीं, जैसे सावन भादों की नदियां तुङ्ग-तरङ्ग को चीर समुद्र मे आ मिलती हैं) उसी बीच मे देखते क्या हैं कि बन चारो ओर से ढहड २ जला चला जाता है। यह देख ग्वालबाल और सखा अति घबराय भय खाकर पुकारे हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! इस आग से वेग ही बचाओ नहीं तो, अभी एक छण मे सब जल मरते हैं। तब कृष्ण बोले कि तुम सब अपनी आंखें बन्द कर लो यह सुन उन्होने नैन मूंद लिये, तब कृष्ण जी ने पल भर मे आग बुझाय एक और माया करी कि गायों समेत सब ग्वालबालों को भण्डारी

कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में सदा वसन्त ही रहा। जहां तहां घनी कुंजों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बरन बरन के फूल फूले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूंज रहे, आम की डालियों पर कोयलें कुहुक रहीं ठंढी छांहों में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिये मीठी मीठी पवन बह रही और वन के एक ओर यमुना न्यारी ही शोभा दे रही थी। वहां कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखा आपस में अनूठे २ खेल खेल रहे। इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बन के प्रलम्ब नामक राक्षस तहां आया। उसे देखते ही श्री कृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से सैन से कहा कि:—

अपनो सखा नहीं बलवीर। कपटरूप यह मनुज शरीर॥
याके बध को करो उपाय। ग्वालरूप मार्यो नहि जाय॥
जब यह धारै रूप आपनौ। तब तुम याहि तत्क्षन हनौ॥

इतनी बातें बलदेव जी को बताय, श्रीकृष्ण जी ने प्रलम्ब को हंस कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा कि—हे भैया! आज हम सब कोई मिलके बुझौअल खेलें जो हारै सो घोड़ा बनकर घुमावे।

यह कह के उसे साथ ले, आधे ग्वालबाल बांट लिये आधे आपने लिये और आधे बलराम जी को दिये। दोनों तरफ के लड़के बैठ गये, फल फूलों का नाम पूछने और बतलाने लगे। इस खेल में प्रथम श्री कृष्ण ही हारे, बलदेव जीते। तब श्री कृष्ण की ओर वाले बोले कि बलदेव जी के साथियों को कन्धे पर चढ़ाय के ले चलो। तब प्रलम्ब बलराम को सब से आगे ले भागा और वन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई। उस समय [illegible] राक्षस पर, बलदेव जी ऐसे शोभायमान हो रहे थे [illegible] घटा पर चांदनी। उनके कुण्डलों की दमक बिजली सी

ौर ठाँव २ पर कुसुम्भे रंग के सूहे ओढे पहिरे गोपी ग्वाल
ाल २ ऊँचे सुरों में मलारें गाते थे। उनके निकट जाय श्रीकृष्ण
लराम भी बाल लीला कर २ अधिक सुख दिखाते थे। इस
ानन्द से जब वर्षाऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने
गे कि भैया! अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

श्रीकृष्णचन्द्र ग्वाल बालों को साथ लेकर लीला करने
गे। जब तक श्रीष्ण वन में धेनु चरावे तब तक गोपियां घर
ठी हरि का यश गावें। एक दिन श्रीकृष्ण ने वन में वेंनु बजाई
ो उस बंशी की धुनि सुन कर सारी ब्रज नारी हड़बड़ा कर उठ
ाई और एक ठौर में मिलकर बाट में आ बैठीं। वहां आपस
कहने लगीं कि हमारे लोचन तब सुफल होंगे, जब श्रीकृष्ण के
र्शन पावेंगे।

दूसरी बोली कि जब श्रीकृष्ण बांसुरी को पीताम्बर से पोंछ
र बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर और गन्धर्व आदि अपनी २
स्त्रयों को साथ ले बिमानों पर बैठ २ हौंस कर सुनने को आते
। बंशी का स्वर सुन एक गोपी ने उत्तर दिया कि पहले तो
सने बांसके बंश मे उपज कर हरिका सुमिरन किया, पीछे घाम,
ीत, जल आदि का कष्ट लिया है। फिर टक २ हो जलते लोह
। देह छिदाय धुआँ पिया है।

यह सुन एक ब्रजनारी बोली कि ब्रजनाथ ने हमको वेनु
यों न रचा जो निशिदिन हरि के साथ रहती। इतनी कथा
नाय कर श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि
हाराज! जब तक श्रीकृष्ण धेनु चराय वन से न आवै तब तक
त्त गोपी हरि के गुण गावै।

बन मे ले आये, और कहा कि आखें खोल दो। जब सब ने आंखें खोलीं, तो कहीं कुछ नहीं।

गौयें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृन्दावन आ और सबों ने अपने २ घर जाय कहा कि आज बन मे बलराम जी ने प्रलम्ब नामक राक्षस को मारा और मूंज वन में आग लगी थी वह भी हरि के प्रताप से बुझ गई । इतनी कथा सुना श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजन् ! ग्वालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजवासी देखने को गये परन्तु उन्हों ने कृष्ण चरित्र का कुछ भी भेद न पाया ।

ग्रीष्म का अति अनीति देख, प्रचण्ड नृप पावस पृथ्वी पर पशु पक्षी और जीव जन्तु पर दया विचार गरजता था, और धौंसा बजाता था और बरन २ की जो घटा घिर आई थी सो शूरवीर रावत थे । उनके बीच मे बिजली की दमक मानो शस्त्र की चमक थी । ठौर २ मे बकपंक्ती मानो श्वेत ध्वजा सी फहराती रही थी । दादुर मोर कड़खैतों की भांति यश बखानते थे । बड़ी बड़ी बूंदों की झड़ बाणों की सी झड़ी लगी थी । इस धूम धाम से पावस का आते देख ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जीव ले भागा । मेघ ने जल बरस कर पृथ्वी को सुख दिया । ... २ तल हुए । उनमें से अठारह भार पुत्र उपजे, सो फल ... पिता को प्रणाम करने लगे । उस काल में ... की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी जैसे कि शृङ्गार ... कामिनी । जहां तहां नदी नाले सरोवर भरे हुए, तिन पर ... शोभा दे रहे, ऊंचे २ वृक्षों की डालियां झूम ... रहीं, तिन पर पिक चातक कपोत कीर बैठे कोलाहल कर रहे हैं

र ठाँव २ पर कुसुम्भे रंग के सूहे ओढ़े पहिरे गोपी ग्वाल
ल २ ऊँचे सुरों में मलारें गाते थे। उनके निकट जाय श्रीकृष्ण
राम भी बाल लीला कर २ अधिक सुख दिखाते थे। इस
नन्द से जब वर्षाऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने
कि भैया! अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

श्रीकृष्णचन्द्र ग्वाल बालों को साथ लेकर लीला करने
। जब तक श्रीष्ण वन मे धेनु चरावे तब तक गोपियां घर
हरि का यश गावें। एक दिन श्रीकृष्ण ने वन में वेंनु बजाई
उस बंशी की धुनि सुन कर सारी ब्रज नारी हडबडा कर उठ
और एक ठौर में मिलकर वाट में आ बैठीं। वहां आपस
कहने लगीं कि हमारे लोचन तब सुफल होंगे, जब श्रीकृष्ण के
न पावेंगे।

दूसरी बोली कि जब श्रीकृष्ण बांसुरी को पीताम्बर से पोंछ
बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर और गन्धर्व आदि अपनी २
यों को साथ ले बिमानों पर बैठ २ हौंस कर सुनने को आते
बंशी का स्वर सुन एक गोपी ने उत्तर दिया कि पहले तो
ने बांसके बंश में उपज कर हरिका सुमिरन किया, पीछे घाम,
त, जल आदि का कष्ट लिया है। फिर टक २ हो जलते लोह
देह छिदाय धुआँ पिया है।

यह सुन एक ब्रजनारी बोली कि ब्रजनाथ ने [illegible]को वेनु
ं न रचा जो निशिदिन हरि के साथ रहती। इतनी कथा
ाय कर श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि
राज! जब तक श्रीकृष्ण धेनु चराय वन से न आवै तब त
त गोपी हरि के गुण गावै।

(५)

गोवर्धन-उत्थापन

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जैसे कृष्णचन्द्र
गिरी गोवर्धन उठाया और इन्द्र का गर्व हराया, अब सोई
कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। सब ब्रजवासी बरसवें दिन का
बदी चौदस को नहाय धोय केसर चन्दन से चौक पुराय
भाँति की मिठाई और पकवान धर, धूप दीप कर, इन्द्र की
किया करते थे। यह रीति उनके यहाँ परंपरा से चली आती
एक दिन वही दिवस आया, तब नन्दजी ने बहुत सी खाने
सामग्री बनवाई और सब ब्रजवासियों के भी घर २ सामग्री
की हो रही थी वहाँ श्रीकृष्ण ने आकर माता से यह पूछा
माता जी आज घर घर मे पकवान मिठाई जो हो रही है, सो
है ? हमको भेद समझा कर कहो, जो मेरे मन की दुविधा
यह सुन यशोदा बोली कि बेटा ! इस समय मुझे बात
अवकाश नहीं है, तुम अपने पिता से जाकर पूछो, वे तुम्हें
कहेंगे। यह सुन श्रीकृष्ण ने नन्द, उपनन्द के पास आय
कहा कि पिता ! आज किस देवता के पूजन की ऐसी धू
है। जिसके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है। वे कैसे
मुक्ति, बर के दाता हैं ? उनका नाम और गुण कहो, जो मेरे
का सन्देह जाय।

तब नन्दमहर बोले कि बेटा ! यह भेद तूने अब तक
समझा है कि मेघों के पति जो सुरपति हैं, तिनकी यह पूजा
जिनकी कृपा से संसार में ऋद्धि सिद्धि मिलती है और
तृण, अन्न होता है, वन उपवन फलते हैं। उनसे सब जी

शु पक्षी आनन्द से रहते हैं। इन्द्र पूजा की यह रीति हमारे यहाँ पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आज ही नहीं निकली है। इतनी बात नन्द जी की सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता, यदि हमारे बड़ों ने जाने वा अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की, परन्तु अब तुम बूझ कर धर्म का पथ छोड़ वटपटांग क्यों चलते हो (इन्द्र के मानने से कछ नहीं होता है। क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं और उससे ऋद्धि सिद्धि ही किसने पाई है ?) यह तुम्हीं कहो कि उसे किसने घर दिया है ? हाँ, एक बात है तप यज्ञादिक के करने वाले देवताओं ने उसे अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है) इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता है। सुनो जब असुरों से बार बार हारता है, तब भाग से कहीं पर छिप कर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहिचानो। (इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता है, जो कर्म मे लिखा है सोई होगा। सुख, सम्पत, दारा, भाई, बन्धु ये भी सब अपने धर्म कर्म से ही मिलते हैं और आठ मास सूर्य जो जल सोखता है, सोई चार महीने बरसता है। उसी से पृथ्वी मे तृण, जल, अन्न होता है। और ब्रह्मा ने जो चारों वर्ण बनाये हैं, यथा ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तिन के पीछे ही एक एक कर्म लगा दिया है। जैसे कि ब्राह्मण तो वेद पढ़े, क्षत्री सब की रक्षा करे, वैश्य खेती बनज और शूद्र इन तीनों की सेवा में रहे।

हे पिता! हम वैश्य हैं। गायें बढ़ीं। इससे यह गोकुल हुआ; और उसी से नाम भी गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करें और गो ब्राह्मण की सेवा में रहें। वेद

(५)

गोवर्धन-उत्थापन

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जैसे गिरी गोवर्धन उठाया और इन्द्र का गर्व हराया, अब सोई कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो। सब ब्रजवासी बरसवें दिन बदी चौदस को नहाय धोय केसर चन्दन से चौक पुराय भाँति की मिठाई और पकवान धर, धूप दीप कर, इन्द्र की किया करते थे। यह रीति उनके यहां परंपरा से चली आती एक दिन वही दिवस आया, तब नन्दजी ने बहुत सी खाने सामग्री बनवाई और सब ब्रजवासियों के भी घर २ सामग्री की हो रही थी वहां श्रीकृष्ण ने आकर माता से यह पूछा माता जी आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है, सो है ? हमको भेद समझा कर कहो, जो मेरे मन की दुविधा यह सुन यशोदा बोली कि बेटा ! इस समय मुझे बात करने अवकाश नहीं है, तुम अपने पिता से जाकर पूछो, वे बुझाय कहेंगे। यह सुन श्रीकृष्ण ने नन्द, उपनन्द के पास आय कहा कि पिता ! आज किस देवता के पूजन की ऐसी है। जिसके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है। वे कैसे मुक्ति, वर के दाता हैं ? उनका नाम और गुण कहो, जो मेरे का सन्देह जाय।

तब नन्दमहर बोले कि बेटा ! यह भेद तूने अब तक समझा है कि मेघों के पति जो सुरपति हैं, तिनकी यह जिनकी कृपा से संसार में ऋद्धि सिद्धि मिलती है और जल, अन्न होता है, बन उपबन फलते हैं। उससे सब जीव

वहां जाय, पर्वत के चारों ओर झाड बुहार, जल छिड़क, घेवर, बावर, जलेबी, लड्डू, खुरमें, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गुंझे, मठड़ी, सादी पूरी, कचौरी, पापड़, पकौडी, मलगाजा आदि पकवान और भाति भांति के भोजन व्यंजन सधाने चुन चुन कर रख दिये कि जिन से सारा पर्वत छिप गया। और ऊपर फूलों की माला पहिराय बरन २ पाटम्बर तान दिये।

तिस समय की शोभा बरनी नहीं जाती। गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय नख सिख से सिंगार किया होय और नन्दजी ने पुरोहित बुलाय, सब ग्वालबालों को साथ ले, रोली, अच्छत, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य कर, पान सुपारी दच्छिणा धर, वेद की विधि से पूजा की। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज जी का ध्यान करो, तो वे आय कर तुम लोगों को दर्शन दें और भोजन करे।

श्रीकृष्ण से यह सुनते ही नन्द यशोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नैन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए। तिस काल नन्दलाल जी ने प्रबल दूसरी देह धर बड़े २ हाथ पांव कर कमल नैन चन्द्रमुख हो मुकुट धरे, वनमाला गरे, पीत बसन और जटित आभूषण पहरे, मुंह पसारे चुपचाप पर्वत के बीच से निकले और उधर आपही अपने दूसरे रूप को देख सब से पुकार कर कहा कि देखो पूजा तुमने जी लगाय की है तन गिरिराज ने प्रकट होय दर्शन दिया है। इतना वचन सुनाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने गिरिराज को दण्डवत की। उनकी देख

आज्ञा है कि अपने कुल की रीति न छोड़िये। इससे अब
की पूजा छोड दीजिये और वन पर्वत की पूजा कीजिये।
हम वनवासी हैं और हमारे राजा भी वेई हैं जिनके राज्य में
सुख से रहते हैं तिन्हें छोड़ और देव को पूजना हमें उचित
है। इससे अब सब पकवान मिठाई अन्न लेकर चलो
गोवर्धन की पूजा करो।

इतनी बात के सुनते ही नन्द उपनन्द उठकर वहां
जहां बड़े २ गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही श्रीकृष्ण
कही सब बातें सुनाई। वे सुनते ही बोले कि श्रीकृष्ण सच
तुम ही विचारो कि इन्द्र कौन है ? और हम किस लिये उसे
हैं ? उसकी तो पूजा ही भूल है।

हमें कहा सम्पति सो काज्ञा। पूजैं वन सरिता गिरिराजा॥

ऐसे कह, फिर सब गोपों ने कहा कि:—

दोहा—भली मतौ कान्हर कियो, तजिये सिगरे देव।
गोवर्धन पर्वत बड़ा, ताकी कीजे सेव॥

यह वचन सुनते ही नन्द जी ने प्रसन्न हो, गांव में
ढिंढोरा फिरवा दिया कि कल दिन हम सारे ब्रजवासी चल
गोवर्धन की पूजा करेंगे। जिसके २ घर में इन्द्र-पूजा के लि
पकवान मिठाई बनी है सो सब ले ले कर भोर ही गोवर्धन
जाइयो। इतनी बात सुन सकल ब्रजवासी दूसरे दिन भोर से
तड़के ही उठ २ कर स्नान ध्यान कर सब सामग्री झालों,
थालों, हंडों और चरूओं में भर, गाडियों, बहगियों पर रखवाय
गोवर्धन को चले। उसी समय नन्द उपनन्द भी कुटुम्ब सं
सामान ले सबों साथ हो लिये और बाजे गाजे से चले २
मिल गोवर्धन पहुँचे।

के ब्रजवासियो को धन अधिक घढा है, इसी से उन्हे अति
ावे हुआ है ।

जप तप यज्ञ तज्यो ब्रत मेरो । काल दरिद्र बुलायो तेरो ॥
मानुष कृष्ण दैव को मानै । ताकी बातै सांची जानै ॥
यह बालक मूरख अज्ञाना । बहुवादी राखै अभिमाना ॥
अबहीं उनकी गर्व परिहरौं । पशु खोऊं लक्ष्मी बिन करौं ॥

ऐसे बकझक खिजलाय कर सुरपति ने मेघपति को बुला भेजा । वह सुनते ही डरता कांपता हाथ जोड सन्मुख आ खडा हुआ । उसे देखते ही इन्द्र बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ और गोवर्धन पर्वत समेत ब्रज मण्डल को बरस बहाओ । ऐसा कर दो कि कहीं गिरि का चिन्ह और ब्रजवासियों का नाम न रहे ।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दण्डवत् कर राजा इन्द्र से विदा हुआ और उसने अपने स्थान पर आय बड़े २ मेघों को बुलाय के कहा कि सुनो जी, महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय व्रजमण्डल को बरस के बहा दो । यह वचन सुन, सब मेघ अपने २ दल बादल ले ले कर मेघपति के साथ हो लिये । आते ही ब्रजमण्डल को घेर लिया और गरज २ बडी २ बूंद से मूसलाधार जल बरसाने लगे और उंगली से गिरि को बताने लगे ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! जब ऐसे चहुँ ओर से घनघोर घटा अखण्ड जल बरसने लगा तब नन्द यशोदा समेत सब गोपी ग्वालबाल भय खा भीगते थर थर कांपते श्रीकृष्ण के पास जाय पुकारे कि

देखी सब गोपी गोप प्रणाम कर आपस में कहने लगे इस भांति इन्द्र ने कब दर्शन दिया था। हम वृथा ही उस की करते थे और ऐसा जानते थे कि पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष को छोड़ क्यों इन्द्र को माना था ? यह बात समझ में आती। यों सब बतलाय रहे थे कि इतने श्रीकृष्ण बोले देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ। इतना सुनते ही गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर २ देने लगे और गोवर्धननाथ हाथ बढ़ाय २ ले ले भोजन लगे। निदान जितनी सामग्री नन्द समेत सब व्रजवासी ले गये थे, सो खाई। तदनन्तर वह सूरत पर्वत में समा गई। इस से अद्भुत लीला करी, श्रीकृष्णचन्द्र सब को साथ पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्धन से चले, हंसते वृन्दावन आये। तिस काल घर २ आनन्द मङ्गल बधाये लगे, और ग्वालबाल सब गाय बछड़ों को रंग २ उनके घंटालियां घुंघरू बांध २ न्यारे हो कुतूहल कर रहे थे।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि:—

जब सारे देवता इन्द्र के पास गये तब वह उनसे लगा कि तुम मुझे समझा कर कहो कि कल व्रज में किस पूजा थी ? इसी बीच में नारद जी भी आय पहुंचे और से कहने लगे कि सुनो महाराज ! तुम्हे सब कोई मानता है, एक व्रजवासी नहीं मानते। क्योंकि नंद के बेटा हुआ है का कहा सब करते हैं। उन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कर कल पर्वत पुजवाया है। इतनी बात के सुनते ही इन्द्र क्रोध कर

क ब्रजवासियो को धन अधिक चढ़ा है, इसी से उन्हे अति
वे हुआ है ।

जप तप यज्ञ तज्यो ब्रत मेरो। काल दरिद्र बुलायो तेरो ॥
मानुष कृष्ण देव को मानै । ताकी बातै सांची जानै ॥
यह बालक मूरख अज्ञाना । बहुबादी राखै अभिमाना ॥
अवहीं उनकी गर्व परिहरौं। पशु खोऊं लक्ष्मी बिन करौं ॥

ऐसे बकझक खिजलाय कर सुरपति ने मेघपति को बुला भेजा । वह सुनते ही डरता कांपता हाथ जोड सन्मुख आ खड़ा हुआ । उसे देखते ही इन्द्र बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ और गोवर्धन पर्वत समेत ब्रज मण्डल को बरस बहाओ । ऐसा कर दो कि कहीं गिरि का चिन्ह और ब्रजवासियों का नाम न रहे ।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दण्डवत् कर राजा इन्द्र से विदा हुआ और उसने अपने स्थान पर आय वडे २ मेघों को बुलाय के कहा कि सुनो जी, महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय व्रजमण्डल को बरस के बहा दो । यह वचन सुन, सब मेघ अपने २ दल बादल ले ले कर मेघपति के साथ हो लिये । आते ही ब्रजमण्डल को घेर लिया और गरज २ बड़ी २ बूंद से मूसलाधार जल बरसाने लगे और उंगली से गिरि को बताने लगे ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज ! जब ऐसे चहुँ ओर से घनघोर घटा अखण्ड जल बरसने लगा तब नन्द यशोदा समेत सब गोपी ग्वालबाल भय खा भीगते थर थर कांपते श्रीकृष्ण के पास जाय

हे कृष्ण ! इस महाप्रलय के जल से कैसे बचेंगे ? तब तो तुमने इन्द्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब उसको वेग बुलाइये जो आय हमारी रक्षा करे, नहीं तो क्षण भर मे नगर समेत डूब मरते हैं। इतनी बात सुन और सब को भयातुर देख श्रीकृष्ण बोले कि तुम अपने जी में किसी बात की चिन्ता मत करो, गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं। यों कह गोवर्धन को तेज से तपाया, अग्निसम किया और बाएँ हाथ की अँगुली पर उठा लिया। तिस काल सब ब्रजवासी अपने ढोरों समेत आय आय उसके नीचे खड़े हुए और श्रीकृष्णचन्द्र को देख २ अचरज कर आपस मे कहने लगे कि—

> है कोउ आदि पुरुष औतारी। देवन हू को देव मुरारी॥
> मोहन मानुप कैसे भाई। अँगुरी पर क्यों गिरि ठहराई॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर २ मुसलाधार जल बरसाता था और इधर तपे हुए पर्वत पै बूँदें गिर कर तवे की तरह जल जाती थीं। यह समचार सुन इन्द्र कोप कर चढ़ आया और लगातार उसी भाँति सात दिन पानी बरसता रहा परन्तु ब्रज मे हरि के प्रताप से एक बूँद भी न पड़ी। जब सब जल निपटा तब मेघों ने आय हाथ जोड कर कहा कि हे नाथ! महाप्रलय का जितना जल था सब का सब हो चुका, अब क्या आज्ञा है ? यह सुन इन्द्र ने अपने ज्ञान ध्यान से विचार किया कि आदि पुरुष ने अवतार लिया है। नहीं तो किस में इतनी सामर्थ थी, जो गिरि धारण कर ब्रज की रक्षा करता! इन्द्र ऐसा समझ कर अछता पछता कर मेघों समेत अपने स्थान को

गया और बादल उड़े, प्रकाश हुआ, तब सब ब्रजवासियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्ण से कहा हे महाराज ! अब गिरि उतार धरिये, मेघ जाता रहा। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र पर्वत जहाँ का तहाँ रख दिया।

श्रीशुकदेव जी बोले कि जब हरि ने गिरि को कर से उतार धरा, उस समय बड़े २ गोप इस अद्भुत व्यापार को देख यों कह रहे थे कि जिसकी शक्ति ने इस महाप्रलय से आज ब्रज मण्डल बचाया, तिसे हम नन्द सुत कैसे कहे ? हां, किसी समय नन्द यशोदा ने महातप किया था उसी प्रभाव से भगवान् ने आय कर इनके घर जन्म लिया है । फिर तो ग्वालबाल आय २ श्रीकृष्ण के गले से मिल २ पूछने लगे कि भैया ! तूने इस कोमल कमल ऐसे हाथ पर ऐसा भारी पर्वत का बोझ कैसे सम्भाला। तदन्तर नन्द यशोदा करुणा कर पुत्र को हृदय लगाय, हाथ पांव अँगुली चटकाय, कहने लगे कि सात दिन गिरि कर पर रखा, अतः हाथ दुखता होगा।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज ! भोर होते होते ही कृष्ण बलराम सब गायें और ग्वालबालों को संग कर अपनी २ छाछें ले वेणु बजाते और मधुर २ सुर से गाते धेनु चरावते बन को चले। उस समय राजा इन्द्र सकल देवताओ को साथ लिये, कामधेनु को आगे किये, ऐरावत हाथी पर चढ सुरलोक से चल, वृन्दावन मे आय बन की बाट खडा हुआ । जब श्रीकृष्णचन्द्र उसे दूर से दिखाई दिये तब गज से उतर, नंगे पांवों गले में कपड़ा डाले, थर थर कांपता आकर श्रीकृष्ण के चरणों पर गिरा पतछाय २ रो २ कहने [illegible] ल मुझ पर दया करो

मैं अभिमानी गर्व अति कियो। राजस तामस मैं मन दियो॥
धनमद कर संपति सुखमाना। भेद न कछू तुम्हारो जाना॥
तुम परमेश्वर सबके ईशा। और दूसरो को जगदीशा॥
ब्रह्मा रुद्र आदि वरदाई। तुम्हरी दई सम्पदा पाई॥
जगतपिता तुम निगमनिवासी। सेवत नित कमला भइ दासी॥
जन के हेत लेत अवतारा। तब तब हरत भूमि के भारा॥
दूर करो सब चूक हमारी। अभिमानी मूरख हौं भारी॥

जब ऐसे दीन हो इन्द्र ने स्तुति करी, तब श्रीकृष्णचन्द्र दयालु हो बोले कि अब तो तू कामधेनु के साथ आया है, इससे तेरा अपराध क्षमा किया। परन्तु फिर गर्व मत कीजो। क्योंकि गर्व करने से ज्ञान जाता है और कुमति बढती है, इन से अपमान होता है। इतनी बातें श्रीकृष्ण के मुख से सुनते ही इन्द्र ने उठकर वेद की विधि से श्रीकृष्ण की पूजा की और गोविन्द नाम धर, चरणामृत ले, परिक्रमा करी। उस समय गन्धर्व भाँति २ के बाजे बजा २ श्रीकृष्ण का यश गाने और देवता अपने अपने विमानों मे बैठ आकाश से फूल बरषाने लगे। उस काल में ऐसा समा हुआ कि मानो फिर श्रीकृष्ण ने जन्म लिया है। जब पूजा से निश्चिन्त हो, इन्द्र हाथ जोड सन्मुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर को जाओ। यह आज्ञा पाते ही कामधेनु और इन्द्र बिदा होय, दण्डवत् कर, इन्द्रलोक को गये और श्रीकृष्ण ने चराय साथ हुए सब ग्वालबालों को लिये वृन्दावन आये। उन्होंने अपने अपने घर जाय २ के कहा कि आज हमने वन में इन्द्र का दर्शन बन में किया है।

दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा। क्योंकि वह कपटी है, मुझे मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक आग से जलाय पानी में डुबाऊँगा, तब निष्कण्टक राज करों। जरासन्ध जो मेरा मित्र है प्रचण्ड, उसके त्रास से कांपते नौ खण्ड। और नरकासुर तथा बाणासुर आदि बड़े २ महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं तिससे जा मिलूँगा, जो तुम रामकृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कह कर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम वृन्दावन में जाय के यहाँ नन्द यह कहियो कि धनुष का यज्ञ है, धनुष धरा है अनेक अनेक प्रकार के कुतूहल होयँगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोप समेत बकरे भैंस भेंट देने को आवेंगे। तिन के साथ देखने को कृष्ण बलदेव आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हे उनके लावने का उपाय बता दिया आगे तुम सज्ञान हो, और जो उक्ति बनी आवे सो करियो तुम से अधिक क्या कहे।

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने मन में विचारा कि जो मैं अब इससे कुछ भली बात कहूँगा तो यह न मानेगा। इस से उत्तम यही है कि इस समय इससे मनभावनी सुहानी बात कहूँ। ऐसा और भी कई ठौर कहा है कि कहिये जो जिसे सुहाय। यों विचार सोच अक्रूर हाथ जोड़ शिर झुकाय बोले कि हे महाराज! तुमने भली भाँति विचार किया है। यह वचन हमने भी सिर चढ़ाय के मान लिया। होनहार पर कछु बस नहीं चलता। मनुष्य अनेकों मनोरथ कर धावता है पर कर्म का लिखाही फल पावता है। सोचते हैं और, होता और है।

दोनो को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा । क्योंकि वह कपटी है, मुझे मरना चाहता है । फिर देवकी के पिता देवक आग से जलाय पानी में डुबाऊँगा, तब निष्कण्टक राज करूँगा। जरासन्ध जो मेरा मित्र है प्रचण्ड, उसके त्रास से नौ खण्ड । और नरकासुर तथा बाणासुर आदि बड़े २ राक्षस जिसके सेवक हैं तिससे जा मिलूँगा, जो तुम को ले आओ ।

इतनी बातें कह कर कंस फिर अक्रूर को समझाने कि तुम वृन्दावन मे जाय के यहाँ नन्द यह क[illegible] का यज्ञ है, धनुष धरा है अनेक अनेक प्रकार के कुतूहल होयँगे । यह सुन नन्द उपनन्द गोप समेत बकरे भैंस देने को आवेंगे । तिन के साथ देखने को कृष्ण आवेंगे । यह तो मैंने तुम्हे उनके लावने का उपाय बता दि[illegible] आगे तुम सज्ञान हो, और जो उक्ति बनी आवे सो तुम से अधिक क्या कहें ।

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने में विचारा कि जो मैं अब इससे कुछ भली बात कहूँगा तो न मानेगा । इस से उत्तम यही है कि इस समय इससे मन[illegible] सुहानी बात कहूँ । ऐसा और भी कई ठौर कहा है कि[illegible] कहिये जो जिसे सुहाय । यों विचार सोच अक्रूर हाथ [illegible] शिर झुकाय बोले कि हे महाराज ! तुमने भली भाँति वि[illegible] किया है । यह वचन हमने भी सिर चढाय के मान लिया । [illegible] पर कछु बश नहीं चलता । मनुष्य अनेको मनोरथ कर[illegible] है पर कर्म का लिख्याही फल पावता है । सोचते हैं और, [illegible]

ौर। किसी के मन का सोचा होता नहीं, आगम बाँध कर तुमने
इ बात विचारी है किन्तु जानिये कैसी होय। मैने तुम्हारी
ात मान ली, कल भोर को जाऊँगा और राम कृष्ण को ले
ाऊँगा। ऐसे कह कंस से विदा हो, अक्रूर अपने घर आये।

जब श्रीकृष्णचन्द्र ने केशी को मारा और नारद ने आय
तुति करी, पुनि हरि ने व्योमासुर को हना, सो सब चरित्र
हता हूँ, तुम चित्त देकर सुनो। भोर होते ही केशी अतिऊँचा
यावना घोड़ा बन कर वृन्दावन में आया और लाल लाल आँखें
र नथुने चढ़ाय कान पूँछ उठाय टाप से भू खोदने और
स २ काँध कँपाय कँपाय लात चलाने लगा।

उसे देखते ही ग्वालबालों ने भय खाय कर श्रीकृष्ण से जाके
कहा कि आज घोड़ा वेप में एक असुर आया है। यह सुनके
श्रीकृष्ण वहीं आये जहाँ वह था और देख लड़ने को फैंटा
बांध ताल ठोक सिंह के भाँति गरज कर बोले, अरे दुष्ट! तू कंस
का तो बड़ा प्रीतम है जो घोड़ा बन कर आया है, किन्तु औरों
के पीछे क्यों फिरता है? आ मुझसे लड़। मै तेरा बल देखूँ कि
तू दीपक के पतंग की भाँति कब तक चारो ओर फिरता है। तेरी
मृत्यु तो निकट आय पहुँची है। यह बचन सुन केशी कोप कर
अपने मन मे कहने लगा कि आज इसका बल देखूँगा।

इतना कह मुँह बाय के ऐसे दौड़ा कि मानो सारे संसार को
खा जायगा। आते ही पहले उसने ज्यों श्रीकृष्ण पर मुँह चलाया है
कि त्यो ही उन्होंने एक बेर तो ढकेल कर पीछे को हटाया। जब
दूसरी बेर वह फिर सँभल के मुख फैलाय के धाया तब श्रीकृष्ण
जी ने अपना हाथ उसके मुँह में डाल लोह की लाठी सा करके

ऐसा बढ़ाया कि जिसने उसके दशों द्वार जा रोके, तब तो केशी घबरा कर जी में कहने लगा कि अब देह फटती है। यह कैसी भई ? जो अपनी मृत्यु अपने मुँह में ली। जैसे मछली बंशी को निगल प्राण देती है तैसे मैंने भी अपना जीव आज खोया।

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ को निकालने के लिये किये, एक भी काम न आया। निदान सांस रुककर पेट फट गया, तब पछाड़ खाय के गिरा। तब उसके शरीर से नदी की भांति लोहू वह निकला। तिस समय ग्वालबाल आय २ देखने लगे। फिर श्रीकृष्णचन्द्र आगे जाय वन में एक कदम के छाँह तले खड़े हुये।

इसी बीच मे बीणा हाथ में लिये नारद मुनि जी आ पहुँचे और प्रणाम कर खड़े होय, बीन बजाय, श्री कृष्णचन्द्र की भूत भविष्य की सब लीला और चरित्रों को गाय के बोले, हे कृपानाथ! तुम्हारी लीला अपरंपार है, इतनी किस मे सामर्थ है जो आप के चरित्रो को बखानै। परन्तु हे प्रभु ! तुम्हारी दया से इतना जानता हूँ कि भक्तो को सुख देने के अर्थ और साधुओ की रक्षा के निमित्त आते हो। हे नाथ ! दुष्ट असुरो के नाश करने ही के हेतु आप बारबार अवतार ले संसार में प्रगटते हो, भूमि का भार उतारते हो।

इतना वचन सुनते ही प्रभु ने नारद मुनि को सब भांति से सम्मानित कर विदा दी। वे तो दंडवत् कर सिधारे और आप सब ग्वालबाल सखाओ को साथ लिये एक बट के तले बैठे। पहिले आप राजा हो, फिर किसी को मंत्री, किसी को प्रधान किसी को सेनापति बनाय, राजनीति से खेल खेलने लगे और पीछे आंख मिचौनी हुई। इधर कंस ने व्योमासुर से कहा कि

सुदेव के पुत्र को हत्या कर उसे हमारे पास ले आओ।

यह सुन हाथ जोड़ के व्योमासुर बोला कि हे महाराज ! वसायगा सो करूँगा आज। मेरी देह है आप ही के काज। जो के लोभी हैं तिन्हे स्वामी के अर्थ जो देते आती है लाज। रु और स्त्री को तो इसी में यश व धर्म है कि स्वामी के निमित्त ण दे दे। ऐसे कह कृष्ण बलदेव के मारने का बीड़ा उठाय, को प्रणाम कर, व्योमासुर वृन्दावन को चला। बाट में जाय लबाल का भेष बनाया। चला २ वहाँ पहुँचा जहाँ हरि ग्वाल बालों के साथ आँख मिचौनी खेल रहे थे। जाते ही उसने दूर हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से जब यह कहा कि महाराज! मुझे अपने साथ खिलाओगे ? तब हरि उसे बुलाकर कहा कि तू पने जी मे किसी बात की हौंस मत रख। जो तेरा मन माने सो ल, हमारे संग खेल। यह सुन वह प्रसन्न होकर बोला कि बृक- ड़े का खेल भला है। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने मुसकुराय के कहा हुत अच्छा तू भेडिया बन और सब ग्वालबाल मेढ़े होवें। यह नते ही फूल कर व्योमासुर तो भेड़िया हुआ और ग्वाल बाल ढ़े बने। इस प्रकार सब के सब आपस में मिल कर खेलने लगे।

तिस समय वह असुर क्या करे कि एक २ को उठा ले ाय और पवत की गुफा मे रख उसके मुँह पर आडी सिला धर ख मूँद के चला आवे। ऐसे करके जब सब को वहाँ रख आया ौर अकेले श्रीकृष्ण बाकी रहे, तब ललकार कर बोला कि ाज कस का काज करूँगा, और सब यदुबंशियों को मारूँगा। ह कह कर ग्वाल का भेप छोड सचमुच भेडिया का रूप बन

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी से बस यदुवंशियों को सताय है। और सच पूछो तो वसुदेव देव ही हमारे ही लिये इतना दुःख पाते हैं। जो हमे न छिपाते, तो वे इतना दु:ख न पाते। यों कह फिर कृष्ण बोले कि—

तुमसो कहा चलति उनि कह्यो। तिन कों सदा ऋणी हौंरह्यौ॥
करतु होयँगे सुरति हमारी। संकट में पावत दुख भारी॥

यह सुन अक्रूर बोले, कृपानाथ! तुम सब जानते हो, मैं क्यो कहूँगा कंस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति। वसुदेव और उग्रसेन को नित मारने का विचार किया करता है, पर वे आजतक अपनी प्रारब्ध से बचे जा रहे हैं और जब से नारद मुनि आप के होने का सब समाचार बुझाय के कह गये हैं, तब से वसुदेव जी को बेडी हथकड़ी दे महा दुःख में रक्खा है। और कल उसके यहाँ महादेव का यज्ञ है और धनुप धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे। सो तुम्हे बुलाने को भेजा है। यह कह कर कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट के सहित लिवाय लाओ। सो मै तुम्हे लेने के लिये आया हूँ। इतना बचन सुनकर राम कृष्ण ने आकर नन्दरायजी से कहा कि—

कस बुलायो है सुनो बात। कही अक्रूर कका यह बात॥
गोरस भेंड़े छेरी लेउ। धनुप यज्ञ है ताको देउ॥
सब मिलि चलो साथ आपने। राजा बोले रहन न बने॥

जब ऐसे समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा तब नन्दराय जी ने उसी समय ढँढोरिये को बुलाय सारे नगर में यों कह के डौंड़ी फिरवाय दी कि कल सवेरे ही सब मिल कर मथुरा को जायँगे, राजा ने बुलाया है। इस बात के

ही भोर होते ही भेंट ले ले सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नन्द जी दूध दही माखन भेड़े बकरे भैंसे ले सगड़ जुनवाय उनके साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल बाल और सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

श्रीकृष्णचन्द्र सब के समेत चले २ यमुना तीर पर आ पहुँचे। तहाँ ग्वालबालों ने जल पिया और हरि ने भी एक बट की छाँह मे रथ खडा किया। जब अक्रूर जी नहाने का विचार कर रथ से उतरे तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वालों को ले आगे को चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आकर मिलते हैं।

यह सुन सबको लेकर नन्द जी आगे बढ़े और अक्रूर जी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में पैठ, डुबकी मार आँख खोल जब देखें तो वहाँ रथ ... श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

हे महाराज! अक्रूर जी तो एक ही मूरति को बाहर और भीतर देख देख सोच रहे थे कि उसी बीच में पहले तो श्रीकृष्णचन्द्र ने चतुर्भुज हो शख चक्र गदा पद्म धारण कर सुर मुनि किन्नर गन्धर्व आदि सब भक्तों समेत जल मे दर्शन दिया और पीछे शेषशायी हो गये। सो देख कर अक्रूर और भूल रहे।

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज! पानी में खड़े अक्रूर को कितनी एक देर मे प्रभु का ध्यान करने से जब ज्ञान हुआ, तब हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगा कि, करता हरता भरता तुम्हीं हो भगवन्त, भक्तों के हेतु ससार मे आय धरते हो भेष

ानन्त। और सुर नर मुनि तुम्हारे अंश हैं। तुम ही से प्रगट
ाते हैं और तुम्हीं में ऐसे समाते हैं, जैसे जल सागर में समाता
। तुम्हारी महिमा है अद्भुत और अनूप, कौन कह सके सदा
ाते हो विराट रूप। सिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, पेट समुद्र, नाभि
ाकाश, केश बादल, रोम वृक्ष, मुख अग्नि, कान दशों दिशा,
यन चन्द्र और भानु, भुज इन्द्र, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन
चन, प्राण, जल, पलक लगना रात दिन, इत्यादि इत्यादि इस
प से विराजते हो, तुम्हे कौन पहचान सकता है? इस भाँति से
तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरण का ध्यान धर कहा कि हे
पानाथ! मुझे अपनी शरण मे रक्खो।

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र
नट-माया की भाँति जल मे अनेक रूप दिखाय के मोह हर
ाये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल, तीर पर आय, हरि को
णाम किया। तिस काल मे नन्दलाल ने अक्रूर से पूछा कि
ा! शीत समै जल के बीच इतनी देर क्यों लगी? हमें यह
ाति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिये चलने की सुधि
ासारी। क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा? यह समझाय
ा कहो, हमारे मन की दुविधा जाय।

सुनि अक्रूर जोर कह हाथा। तुम सब जानतही ब्रजनाथा॥
भलौ दरश दीनो जलमाहीं। कृष्णचरित्र को अचरज नाहीं॥

अब यहाँ विलम्ब न करिये, शीघ्र चल कर कारज
ीजिये। इतनी बात सुनते ही हरि झट पट रथ पर बैठ कर
क्रूर को साथ ले चल खड़े हुए और नन्द आदि जो सब गोप
ाल आये थे, उन्होने जाकर मथुरा के बाहर डेरा किया

और कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे कि इतनी अबेर नहाते क्यों लगी और किसलिये अब तक नहीं आये हरि। इसी बीच में चले आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी आय मिले। उस समय हाथ जोड सिर झुकाय विनती कर अक्रूर जी बोले कि हे व्रजराज! अब आप चल के मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों को दरश दिखा सुख दीजै। इतनी बात के सुनते ही हरि ने अक्रूर जी से कहा कि:—

मोहिं भरोसौ भयो तिहारो। वेगि नाथ मथुरा पगु धारो॥
पहले सुधि कंस को देहु। तब अपनो दिखरावौ गेहु॥
सबकी विनती कहौं बुझाय। सुनि अक्रूर चले सिर नाय॥

चले २ कितनी एक बेर में रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किये बैठा था। इनके देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला और बडे आदर मान से हाथ पकड के ले जाय कर सिंहासन पर अपने पास बैठाया। इनकी कुशल क्षेम पूछ कर बोला कि जहाँ गये थे वहाँ की बात कहो।

कंस प्रसन्न हो बोला कि अक्रूरजी आज तुमने हमारा बडा काम किया जो राम कृष्ण को ले आये। अब घर जाय कर विश्राम करो।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! कंस की आज्ञा पाय अक्रूरजी तो अपने घर गये और वह सोच विचार करने लगा। इधर जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूछा कि जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें। यह सुन पहले तो नन्दराय जी ने खाने को मिठाई निकाल कर दी, फिर दोनों भाइयोंने मिलकर

खाय ली। पीछे बोले कि अच्छा, जाओ देख आओ, पर विलंब मत कीजियो।

इतना वचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द-कन्द दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। नगर के बाहर चारों ओर वन उपवन मे फल फूल रहे हैं, और बड़े पंछी बैठे अनेक अनेक भाँति के मन के भावना बोलियाँ बोलते हैं, और बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उनमें कमल खिले हुए हैं, जिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं, और तीर पर हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं, शीतल सुगन्धसनी मन्द पवन बह रही है और बड़ी बड़ी वाडियों की पाडों पर पनवाडियाँ लगी हुई, हैं बीच बीच मे बरन बरन के फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई हैं, ठौर ठौर पर इन्दारा बावडियों पर पहट परोहे चल रहे हैं, माली मीठे सुरों से गाय गाय जल सींच रहे हैं।

यह शोभा वन उपवन की निरख, हरप कर प्रभु सब ग्वाल-बाल सखा समेत मथुरापुर में पैठे। पुरी कैसी है जिसके चहु ओर तावे के कोट और पकी चुआन चौकड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक जिनमें अष्टधाती किवाड कञ्चन खचित लगे हुए हैं, और नगर में बरन २ के लाल पीले हरे धौले पञ्चखने मन्दिर ऊँचे २ ऐसे बने हैं कि घटा से बातें कर रहे हैं, ध्वजा पताका फहराय रही हैं, जाली झरोखों मोखो से धूप की सुगन्ध आय रही है, द्वार २ पर केले के खम्भे और सुवरन कलश पल्लव भरे धरे भए हैं, तोरण वंदनवार बँधी हुई हैं, दर २ बाजने बाज रहे हैं और एक भाँति भाँति के मणिमय कंचन के मन्दिर राजा

कि हम तो सीधी चाल से मागते हैं, तुम उलटा क्यों समझाते हो, कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा वरन् यश लाभ होगा। यह वचन सुन रजक झुंझला कर बोला कि राजा की बागे पहरने का मुह तो देखो, मेरे आगे से जा, नहीं तो अभी मार डालता हूँ। इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछी नजर कर एक हाथ से ऐसा मारा कि उसका सिर भुट्टा सा उड गया। तब जितने उसके साथी और टहलुए थे, सबरे साथ पोठें मोटे लादियो को छोड अपना जीव ले भागे और कंस के जाय पुकारे कि महाराज ! श्रीकृष्ण जी ने सरकारी कपड़े ले लिये और आप पहरे, भाई को पहराय और ग्वालवालों को बाँट दिये, वाकी जो बचे सो लुटाय दिये। यह सुन कर कंस को बड़ा क्रोध आया, उन धोबियो को घर न जाने की आज्ञा देकर अपने दूतो लो बुलवाया और उन से कहा कि तुम लोग नगर मे जा कर देखो कि नन्द के दोनों बेटे कौन २ से काम करते हैं। दूत इस बात को सुन कर चला चला वहां आया जहाँ कृष्ण बलराम बड़े आनन्द से अपने मित्रो मे लूटे हुए कपड़ो को बाँट रहे थे। तिस समय ग्वाल वाल अति प्रसन्न हो उलटे पुलटे वस्त्र पहन रहे थे।

जब वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूजा ने आय दण्डवत कर खड़े हो हाथ जोड के कहा कि महाराज ! मै कहने को तो कस का सेवक कहलाता हूँ पर मन में सदा आप ही का गुण गाता हूं। दया कर कहिये तो बागे पहिराऊँ, जिससे तुम्हारा दास कहलाऊँ।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्ण-

और कुब्जा अपने घर जाय केसर चन्दन से चौक पुराय हरि के मिलने की आस मन मे रख मगलाचार करने लगी।

इसी बीच मे नगर देखते २ सब के समेत प्रभु रगभूमि देखने के हेतु राजपौरि पर जा पहुंचे, तो इन्हे अपने रंग मे रंग राते मदमाते से आते देखते ही पौरिये रिसाय के बोले कि इधर उधर किधर चले आतेहो गँवार, दूर खड़े रहो यह है राजद्वार। द्वरपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्शने वहां चले गये, जहां तीन ताड लम्बा अति मोटा भारी महादेव का धनुप धरा था, जाते ही झट उठाय चढाय सहज स्वभाव ही खैंच के यों तोड डाला कि जैसे हाथी गाँडा तोडता है।

इस में जो सब रखवाले कंस के बिठाये धनुप की चौकी देते थे सो चढ़ आये, तब प्रभु ने उन्हे भी मार गिराया। तिस समय पुरवासी लोग यह चरित्र देख विचार कर निशंक हो आपस में यो कहने लगे कि देखो, राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप ही बुलाई हैं। इन दोनों भाइयों के हाथ से अब जीता न बचेगा और उधर धनुप टूटने का अति शब्द सुन कंस अति भय खाय अपने सेवक लोगो से पूछने लगा कि यह महाशब्द काहे का हुआ? इसी बीच मे कितने एक लोग जो राजा से दूर खडे हो देखते थे, वे मूढ फिर कर यों जाय पुकारे कि महाराज की दुहाई, राम-कृष्ण ने आय नगर में बडी धूम मचाई। शिव का धनुष तोड़ सब रखवारों को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही कंस ने बहुत से योधाओं को बुला के कहा कि तुम इन के साथ जाओ और कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी मार आओ। इतना वचन कंस के मुख

निकलते ही वे अपने २ अस्त्र-शस्त्र ले कर वहां गये, जहां वे दोनों भाई खड़े थे। इन्होंने उन्हे ज्यों ललकारा, त्यों उन्होंने इन सब को भी आय कर मार डाला। जब हरि ने देखा कि यहां कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा, तब बलराम जी से कहा कि बाबा नन्द हमारी बाट देख अनेकों भावना करते होयेगे। यों कह सब ग्वाल-बालों को साथ ले प्रभु बलराम समेत चल कर वहां आये, जहां डेरे पड़े थे। आते ही नन्द महर से तो कहा कि पितर! हम नगर मे भला कुतूहल देख आये और गोपबालों ने अपने यागे दिखलाये।

श्रीकृष्णाचन्द्र बड़े लाड से बोले कि पिता! भूक लगी है, जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिये। इतनी बात के सुनते ही उन्होने जो पदार्थ खाने का साथ लाये थे सो निकाल कर दिया, तब कृष्णा बलदेव ने उसे ले ग्वालबालों के साथ मिल कर खाय लिया। इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! इधर तो ये आय परमानन्द से व्यालू कर सोये, और उधर श्रीकृष्णा की बातें सुन २ कंस के चित में अति चिन्ता हुई। सो न उसे बैठे चैन था, न खड़े, मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसी से खोल कर न कहता था।

निदान अति घबराय, मन्दिर में जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डर के नींद न आई।

तीन पहर निसि जागत गई। लागी पलक नींद छिन भई॥
तब सपनौ देखौ मन मांहि। फिर सीस बिन धर कौ छांहि॥
कबहूं नगन रेत में न्हाय। चारे गदहा चढ़ विष खाय॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

वरत रूख देखै चहुँ ओर। तिन पर बैठे वाल किशोर ॥

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! जब कंस ने ऐसा सपना देखा, तब तो वह अति व्याकुल हो चौक पडा और सोच विचार करता उठ कर बाहर आया और अपने मन्त्रियो को बुलाय के बोला कि तुम अभी जाओ रगभूमि को झडवाय छिड़कवाय सँवारो और नन्द उपनन्द समेत सब ब्रजवासियो को और वसुदेव आदि यदुवशियों को रंगभूमि मे बुलाय बिठाओ और जो सब देश विदेश के राजा आये हैं तिन्हे भी रंगभूमि मे बुलाय बैठाओ उतने मे मैं भी आता हू।

कस की आज्ञा पाय मन्त्री रंगभूमि मे आये। उसे झडवाय छिडकवाय वहा पाटम्बर बिछाय ध्वजा पताका तोरण बदनवार बँधवाय अनेक अनेक भाति के बाजे बजवाय सब को बुलवाय भेजा। वे आये और अपने अपने मंच पर जाय बैठे। इसी बीच में राजा कंस भी अति अभिमान भरा अपने मचान पर बैठा। उस समय देवता भी अपने २ विमानों में बैठ आकाश मे देखने लगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! भोर ही जब नन्द उपनन्द आदि सब बड़े २ गोप रगभूमि की सभा मे गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि भाई ! सब गोप आगे गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि को देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए और सब ग्वालवाल सखाओं से कहा कि भाइयो, चलो रगभूमि की रचना देख आवें। यह वचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो लिये।

निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर भेष किये ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये चले २ रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए, जहाँ दश सहस्र हाथियों के बल वाला मतवाला कुवलिया गज खड़ा झूमता था।

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मारकर भूमि का भार उतारने को आये हैं। यह सुन महावत क्रोध कर बोला कि मैं जानता हूँ कि गौ चराय के त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहाँ आय खड़े हुए की भाँति अड़ खड़े हैं। धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है जब तक इससे न लड़ोगे तब तक भीतर न जाने पाओगे तुमने तो बहुत बली मारे हो [illegible] तब मैं जानूँगा कि तुम [illegible]

श्री शुकदेव जी बोले हे महाराज! उसे कभी बलराम सूँड पकड़ खैंचते थे, कभी श्याम पूंछ पकड़ते और जब इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे। कितनी एक बेर तक उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़े के साथ बालकपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूंछ पकड के फिराय कर उसे दे पटका और मारे घूसो के मार डाला। जब दात उखाड लिये तब उसके मुँह से लोहू नदी की भांति वह निकला। हाथी के मरते ही जब महावत ललकार कर आया तब प्रभु ने उसे भी हाथी के पांव तले धर झट मार गिराया और हंसते हसते दोनों भाई नटवर भेष किये एक २ दांत हाथी का हाथ मे लिये रंगभूमि के बीच में जा खड़े हुए। उस समय नन्दलाल को जिन जिन ने जिस भाव से देखा, उस उस को उसी उसी भाव से दृष्टिगोचर हुए। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओ ने राजा जाना, देवताओ ने अपना प्रभु करके बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समजा और पुर की युवतियों ने रूप निधान और कंसादिक राक्षसों ने काल के समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस ने अतिभय मान कर पुकारा कि अरे मल्लो! इन्हे पकड़ मारो इनको मेरे आगे से टारो।

इतनी बात जब कंस के मुंह से निकली, तब, मल्ल गुरु सुत चेले संग लिये बरन २ के भेप किये, ताल ठोंक २ भिड़ने को श्रीकृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आये। जैसे ही वे आये कि वैसे ये सँभल कर खड़े हुए। तब उन मे से चाणूर इनकी ओर देख कर, चतुराई से बोला कि सुनो, आज हमारे राजा कुछ उदास हैं इस से जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखना चाहते

हैं। क्योंकि तुमने वन में हर प्रकार की सब विद्यायें सीखी हैं। और किसी बात का मन में सोच न कीजै, हमारे साथ मल्लयुद्ध कर अपने राजा को सुख दीजै।

यह सुन श्री कृष्ण जी बोले कि राजा जी ने बड़ी दया कर के हमे आज बुलाया है। हम से क्या इनका काज सरेगा? तुम अति बली और गुणवान हो, हम बालक अनजान हैं। अतः तुम से हाथ कैसे मिलावें? कहा है कि ब्याह, वैर और प्रीति समान से करना चाहिये पर राजा जी से कुछ हमारा बस नहीं चलता, इस से तुम्हारा कहा मानते हैं, किन्तु हमे बचा लेना बल करके पटक देना, अब हमें तुम्हें यही उचित है कि जिस में धर्म रहे सोई करें, और मिल कर अपने राजा को सुख दें।

श्री शुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! ऐसे कितनी एक बातें कर ताल ठोंक के चाणूर तो श्री कृष्ण के सोंही हुआ और मुष्टिक बलराम जी से आय भिड़ा। उनसे मल्लयुद्ध होने लगा।

दोहा—सिर सों सिर भुज सों भुजा, दृष्टि सों जोरि।
चरण चरण गहि झपट कै, लपटन झपक झकोर॥

उस काल सब लोग उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि भाइयो! इस सभा में अति अनीति होती है, देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ ये सब मल्ल वज्र समान। जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म नसाय। इस से अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि हमारा कुछ बस नहीं नहीं चलता है।

श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे और इधर श्री कृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन दुष्टों को [illegible]

मारा। उनके मरते ही सब मल्ल आय जुटे, तब प्रभु ने पल भर में तिन्हे भी मार गिराया, तिस समय हरि भक्त तो प्रसन्न हो बाजने बजाय जै जैकार करने लगे और देवता आकाश से अपने विमानों में बैठे कृष्णयश गाय २ फूल बरसावने लगे, और कंस अति दुःख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने सेवक लोगों से कहने लगा कि अरे बाजे क्यों बजाते हो? तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है?

यों कह कर बोला कि यह दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हे पकड बांध कर सभा से बाहर ले जावो और देवकी समेत उग्रसेन तथा वसुदेव कपटी को पकड लावो। पहले उन्हे मारो, पीछे इन दोनो को भी मार डालो। इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही भक्तो के हितकारी मुरारी ने सब असुरो को क्षण भर में मार डाला, और उछल करके वहां जा चढ़े, जहा अति ऊँचे मच पर झीलम टोप दिये फरी खाड़ा लिये बड़े अभिमान से कंस बैठा था, वह इनको काल समान निकट आते देख भय खाय कर उठ खड़ा हुआ और लगा थर थर कापने।

मन में तो यह आया कि भागूँ पर मारे लाज के भाग न सका। फरी खाडा सँभाल लगा चोट चलाने। उस काल नन्दलाल अपनी चोट लगाते और उसकी चोट बचाते थे, और सुर नर मुनि गधर्व यह महायुद्ध देख २ भयभीत हो यों पुकारते थे, कि हे नाथ! इस दुष्ट को वेग मारो। कितनी एक वेर तक मंच पर युद्ध रहा। निदान प्रभु ने सब को दुःखित जान, उसके केश पकड़ मंच से नीचे पटका और ऊपर से आप भी उसके ऊपर कूदे कि जिसके आघात से उसका जीव घट से निकल सटका। तब सभा के सब

लोग यह पुकारे कि श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को मारा ! यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनन्द हुआ ।

दोहा—करि अस्तुति पुनि हरष, बरष सुमन सुरवृन्द ।
मुदित बजावत दुंदुभी, कहि जै जै नंद नन्द ॥

सो०—मथुरापुर नर नारि, अति प्रफुलित सब को हियो ।
मनहुँ कुमुदवन चारु, विकसित हरि शशिमुख निरखि ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे धर्मावतार ! कंस के मरते ही उसके आठ भाई जो अति बलवान् थे सो लड़ने को चढ़ आये । तब तो प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया । जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा, तब कंस की लोथ को घसीट कर यमुना तीर पर ले आये और दोनो भाइयों ने वहीं बैठ कर विश्राम किया, उसी दिन से उस ठौर का नाम विश्रामघाट हुआ ।

आगे कंस का मरना सुन कंस की रानियां पटरानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहां आईं, जहां जमुना के तीर पर दोनो वीर मृतक लिये बैठे थे । और अपने पति का मुख निरख २ सुख सुमिरि सुमिरि गुण गाय गाय व्याकुल हो हो पछाड़ खाय खाय रोने लगीं। इसी बीच में करुणानिधान कान्हजू करुणा कर उनके निकट आय कर बोले कि—

मामी सुनहु शोक नहि कीजै । मामा जू को पानी दीजै ॥
सदा न कोऊ जीवत रहै । झूठो सो जो अपनो कहै ॥
मातपिता सुत बन्धु न कोई । जन्मजन्म फिरि मिलहि न सोई ॥
जो लौं प्राणी स्वारथ रहै । तौ लौं वो मिलिके सुख लहै ॥

हे महाराज ! तब श्रीकृष्णचन्द्र ने रानियों को देख

समझाया तब उन्होंने वहाँ से धीरज धर यमुना तीर पै आय कर पति को पानी दिया और आप प्रभु ने अपने हाथ से कंस को आग दे उसकी गति की।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियां तो खोरानियों समेत वहाँ से नहाय धोय रो पीट कर राजमन्दिर को गई और श्रीकृष्ण बलराम वसुदेव देवकी के पास आय उनके हाथ पाव की हथकडियाँ व बेडियाँ काट दण्डवत कर हाथ जोड सन्मुख खडे हुए। तिस समय प्रभु का रूप देखकर वसुदेव देवकी को जब ज्ञान हुआ तब उन्होंने अपने मनमें यों निश्चय करके जाना कि ये दोनो विधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने संसार मे अवतार लेकर आये हैं।

---

(८)

जरासन्ध और कालयवन

श्रीशुकदेव जी बोले हे महाराज ! जिस प्रकार श्री कृष्णचन्द्र जरासध को दल समेत जीत, कालयवन को मार, मुचुकुन्द को तार ब्रज को तज द्वारिका में जाय बसे सो सब कथा मैं कहता हूँ। तुम सचेत हो चित्त लगाय कर सुनो। राजा उग्रसेन मथुरापुरी मे राज करते थे, और श्रीकृष्ण बलराम सेवक की भाँति उनकी आज्ञाकारी मे रहते थे। इससे राजा के राज्य की प्रजा सब सुखी थी। पर एक कंस की रानियाँ ही अपने पति के इस शोक से महादुखी थीं उन्हे न नींद आती थी, न भूख प्यास लगती थी, आठों पहर उदास रहती थीं।

एक दिन वे दोनों बहिन अति चिन्ता कर आपस में कहने लगी कि जैसे नृप बिना प्रजा, चन्द्र बिन यामिनी शोभा नहीं पाती है तैसे ही कन्त बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती है। अब अनाथ हो यहाँ रहना भला नहीं है, इससे अपने पिता के घर चल कर रहिये, सो अच्छा है। हे महाराज! ये दोनो रानियाँ ऐसा आपस में सोच विचार कर रथ मगवाय उस पर चढ़ कर मथुरा से चलीं, मगध देश में अपने पिता के यहां आईं। और जैसे श्रीकृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा था, तैसे ही उन दोनो ने रो रो कर सब समाचार अपने पिता से कह सुनाया।

सुनते ही जरासंध अति क्रोध कर सभा में आया और कहने लगा कि ऐसे बली कौन यदुकुल में उपजे हैं जिन्होंने सब असुरों समेत महाबली कंस को मार मेरी बेटियों को रांड किया। अपनी सब कटक लेकर चढ़ धाऊंगा और यदुवंशियों समेत मथुरापुरी को जलाय राम कृष्ण को जीता बांध लाऊंगा तो मेरा नाम जरासंध, नहीं तो नहीं।

इतना कह उसने तुरन्त ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखा कि तुम अपना २ दल लेकर हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले यदुवंशियों को निर्वंश करेंगे। जरासंध का पत्र पाते ही सब देश २ के नरेश अपना दल साथ ले शीघ्र ही चले आये और यहां जरासंध ने भी अपनी सब सेना ठीक ठाक बना रक्खी थी। निदान सब असुर दल साथ ले जरासन्ध ने [illegible] देश से मथुरापुरी को प्रस्थान किया, उस समय उसके संग तेईस अक्षौहिणी सेना थी। [illegible]

की चिन्ता मत करो। यह सब असुरदल जो तुम देखते हो, सो पल भर मे यहां का यही बिलाय जायगा, जैसे कि पानी के बबूले पानी में बिलाय जाते हैं। यह सबको समझाय ढाढस बँधाय उनसे बिदा हो प्रभु ज्योंही चढ़े हैं कि त्योंही देवताओं ने दो रथ शस्त्रों से भर कर इनके लिये भेज दिये। वे भी आय के इनके सोंही खड़े हुए तब दोनो भाई उन दोनों रथो में बैठ गये।

निकसे दोऊ जन यदुराय। पहुँचे सुन्दर दल में जाय॥

जहां जरासन्ध खड़ा था तहां जा निकले। इन्हे देखते ही जरासध श्री कृष्णचन्द्र से अति अभिमान कर कहने लगा कि अरे! मेरे सोंही से भाग जा, क्योंकि मै तुझे क्या करूँ, तू बल मे मेरे समान नही हैं, जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊँ। किन्तु बलराम को मै देख लेता हूँ इतना सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि अरे मूर्ख! अभिमानी! तू यह क्या बकता है? जो सूरमा होते हैं, सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते, सब से दीनता करते हैं, काम पड़ने पर अपना बल दिखाते हैं। और जो अपने मुँह अपनी बडाई हांकते हैं सो क्या कुछ भले कहाते हैं। कहा है कि गरजता है सो बरसता नही। इससे बृथा बकवाद क्यो करता है। इतनी बात के सुनते ही जरासन्ध ने जब क्रोध किया, तब श्रीकृष्ण बलराम चल खड़े हुए। इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया कि उसने यो पुकार कर यह सुनाया कि अरे दुष्टो! मेरे आगे से तुम कहां भाग कर जावोगे? बहुत दिन जीते बचे। तुमने मन मे यही समझ रक्खा कि हम अमर हैं किन्तु अब जीते न रहने पाओगे, जहां सब असुरो समेत कंस गया है तहां सब यदुबंशियो समेत तुम्हें भी भेजूंगा। हे महाराज! ऐसा दुष्ट वचन असुर के मुख से

निकलते ही कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए। अनन्तर श्रीकृष्णजी ने तो सब शस्त्र लिये और बलराम जी ने हल मूसल लिया। फिर जब असुरदल उनके निकट गया तब दोनों वीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे। और लोहा बजने लगा।

उस काल में मारू बाजा जो बजता था, सोई मानो मेघ गरजता था और चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था, सोई दल मानो बादल सा छाया था और शस्त्रों की जो झड़ी लगी थी, सोई पानी की झड़ी सी लगी थी। उसके बीच में श्रीकृष्ण बलराम युद्ध करते समय ऐसे शोभायमान लगते थे जैसे श्याम घन में दामिनी सुहावनी लगती है। उस समय सब देवता अपने २ विमानों पर बैठ, आकाश में देख २ प्रभु का यश गाते थे और इन्हीं की जीत मनाते थे और उग्रसेन समेत सब यदुवंशी अति चिन्ता कर मन ही मन पछताते कि हमने यह क्या किया जो कृष्ण बलराम को असुर दल में जाने दिया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ! जब लड़ते २ असुरों की बहुत सी सेना कट गई, तब बलदेव जी ने रथ से उतर कर जरासन्ध को बाँध लिया। उस समय श्रीकृष्ण जी ने जाके बलराम से कहा कि भाई! जीता ही छोड़ दो मारो मत। क्योंकि यदि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे। और जो जीता न छोड़ेंगे, तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे। ऐसे बलदेव जी को समझाय प्रभु ने जरासन्ध को छुड़वाय दिया।

वह अपने उन साथी लोगों के पास गया जो रण से भाग के बचे थे।

चहुँदिशि जाहि कहै पछताय। सिगरी सेना गई बिलाय॥
भयो दुःख अति कैसे जीजै। अब घर छांडि तपस्य कीजै॥
कबहूँ हार जीत पुनि होई। राज देश छाड़े नहिं कोई॥

क्या हुआ जो अब लडाई मे हारे, फिर अपना दल जोड लावेंगे और यदुबंशियो समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। हे महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रण से भाग के बचे थे, तिन्हें और जरासन्ध को मन्त्री ने घर पहुँचाया और यह फिर वहां कटक जोड़ने लगा। यहा श्रीकृष्ण बलराम रणभूमि मे देखते क्या हैं कि लहू की नदी बह निकली है, जिसमे रथ बिना रथी के नाव से बहे जाते हैं। ठोर २ पर हाथी मरे भये पहाड से पड़े दृष्टि आते हैं, उनके घाओं से रक्त झरनों की भांति झरता है। तहा महादेव जी भूत-प्रेत संग लिये अति आनन्द से नाच २ गाय २ मुण्डो की माला बनाय २ पहनते हैं और भूतनी, प्रेतनी जोगिनिया खप्पर भर २ रक्त पीती है। गिद्ध, गीदड़, काग लोथों पर बैठे २ मांस खाते हैं और आपस में लड़ते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! जितने रथ, हाथी, घोड़े और राक्षस उस खेत मे गिर गये थे, तिन्हे पवन ने तो समेट कर इकट्ठा किया और अग्नि ने पल भर में सब को जला कर भस्म कर दिया, सब पञ्चतत्व मे मिल गये। इन्हे आते तो सब ने देखा पर जाते किसी ने न देखा कि किधर गये! ऐसे असुरों को मार, भूमि का भार उतार, श्रीकृष्ण बलराम

भक्तहितकारी उग्रसेन के पास दण्डवत् कर हाथ जोड बोले कि हे महाराज! आप के प्रताप से असुर दल को मार भगाया। अब निर्भय राज कीजिये, और प्रजा को सुख दीजिये। इतना वचन इन के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन अति आनन्द मान बड़ी बधाई की और धर्मपूर्वक राज करने लगे। इस प्रकार कितने दिन पीछे फिर जरासन्ध उतनी ही सेना ले चढ़ि आया। और श्रीकृष्ण बलदेव जी ने भी पुनि उन्हे यों ही मार भगाया। ऐसी २ तेइस अक्षौहिणी सेना ले जरासन्ध सत्रह बेर चढि आया और प्रभु ने उसे मार हटाया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! इसी बीच नारद मुनि के जी मे कुछ आई तो ये एका-एकी उठ कर कालयवन के यहाँ गये। इन्हे देखते ही वह सभा समेत उठ खडा हुआ और उसने दण्डवत् कर हाथ जोड के पूछा कि हे महाराज! आप का आना यहाँ कैसे हुआ।

सुनि के नारद कहैं विचारी। मथुरा में बलभद्र मुरारी॥
तो बिन तिन्हे हतै नहिं कोई। जरासन्ध सो कछु नहिं होई॥
तू है अमर और अति बली। बालक हैं बलदेव और हरी॥

यों कह फिर नारद जी बोले कि जिसे तू मेघबरन कमलनैन अतिसुन्दरबदन पीताम्बर पहिरे पीतपट ओढ़े देखे तिस का पीछा तू बिना मारे मत छोडियो। इतना कह नारद मुनि तो चले गये और कालयवन अपना दल जोडने लगा। इस के कुछ दिन बीते बाद में उसने तीन करोड़ महा म्लेच्छ अति भयानक इकट्ठे किये। ऐसे कि जिनकी मोटी भुजा, बड़े दाँत, मैले भेष, भूरे केश, नैन घुमचीसे लाल, तिन्हे साथ ले डका दे कर मथुरा-

पुरी पर चढ़ि आया। और उसे चारों ओर से घेर लिया। उस काल मे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उस का यह व्यवहार देख अपने जी मे विचार किया कि अब यहां रहना भला नहीं है क्योंकि आज यह चढ़ि आया है और कल को जरासन्ध भी चढ़ि आवे तो प्रजा दु:ख पाएगी। इस मे उत्तम यही है कि यहां न रहिये, सब समेत समुद्र मे बसिये। हे महाराज! हरि ने यों विचार कर विश्वकर्मा को बुलाय समझाय के कहा कि तू अभी जा के समुद्र के बीच मे एक नगर बनाओ। ऐसा नगर हो कि जिसमे सब यदुवंशी सुख से रहें परन्तु वे भेद न जाने कि ये हमारा घर नहीं है और पल भर मे सब को वहां ले जाकर पहुँचा आओ।

इतनी बात सुनते ही विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच मे सुदर्शन के ऊपर बारह योजन का नगर जैसा कि श्रीकृष्ण ने कहा था वैसा ही रात भर मे बनाया और उस का नाम द्वारिका रख आकर हरि से कहा कि आप की आज्ञा का पालन हो गया। फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि इसी समय तू सब यदुवंशियों को वहां पहुंचाय आव किन्तु कोई यह भेद न जानने पाये कि हम कहां आये? और कौन ले आया?

इतना वचन प्रभु के मुख से ज्यों निकला त्यों ही रातोंरात उग्रसेन, वसुदेव आदि समेत विश्वकर्मा ने सब यदुवंशियों को वहां पहुँचाय दिया और श्रीकृष्ण बलराम भी वहां पधारे। इसी बीच मे समुद्र की लहर का शब्द सुन कर यदुवंशी चौंक पड़े और अति अचरज कर आपस मे कहने लगे कि मथुरा मे समुद्र कहां से आया? भेद कुछ जाना नहीं जाता।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से

कहा कि हे पृथ्वीराज ! ऐसे सब यदुवंशियों को द्वारिका मे बसाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि हे भाई ! अब चल के प्रजा की रक्षा कीजिये और कालयवन का वध कीजिये। इतना कह दोनो भाई वहा से चल कर ब्रजमण्डल मे आये।

श्रीशुकदेव मुनि बोले हे महाराज ! ब्रजमण्डल मे आते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को तो मथुरा मे छोड़ा और आप रूपसागर जगत उजागर पीताम्बर पहन पीतपट ओढ सब सिंगार किये कालयवन के दल मे जाकर उसके सम्मुख हो कर निकले, वह उन्हे देखते ही अपने मन मे कहने लगा कि हो न हो यही कृष्ण हैं, क्यों कि नारद मुनि ने जो चिह्न बताये थे, सो सब पाये जाते हैं। इन्हीं ने कंसादि असुरों को मारा है और जरासंध की सब सेना हनी है। ऐसा मन ही मन विचार—

काल यवन यों कहै पुकारी। काहे भागे जात मुरारी॥
आय पर्यों अब मोसों काम। ठाढ़े रहौ करो संग्राम॥
जरासंध यों नाहीं कस। यादव कुल को करौं विध्वंस॥

हे राजन् ! यह कालयवन अति अभिमान करके अपनी सब सेना को छोड अकेला ही श्रीकृष्ण चन्द्र के पीछे धाया, परन्तु उस मूर्ख ने प्रभु का भेद न पाया। आगे २ तो हरि भागे जाते थे और एक हाथ के अन्तर पर पीछे २ कालयवन दौड़ा जाता था। निदान भागते २ जब बहुत दूर निकल गये, तब प्रभु पहाड की गुफा में चले गये, वहां जाकर देखा कि एक पुरुष सोया है। ये झट अपना पीताम्बर उसे उढाय, आप अलग एक ओर छिप रहे। पीछे से कालयवन भी दौडता हाँफता उस अन्धेरी कन्दरा में जा पहुँचा और पीताम्बर ओढे उस पुरुष को सोता

देख अपने जी मे जाना कि यह कृष्ण ही छल करके सो रहा है।

हे महाराज ! ऐसा मन ही मन विचार करके क्रोध कर उस सोते हुए को एक लात मार, कालयवन बोला कि अरे कपटी! क्या मिस करके साधु की भाति निश्चिन्तताई से सो रहा है। उठ मै तुझे अभी मारता हू। यह कह कर उसने उसके ऊपर से पीतांबर झटक लिया। तब वह नींद से चौंक पडा और ज्यों ही उसने इसकी ओर देखा कि त्यो ही वह जल कर भस्म हो गया। इतनी बात सुनते ही राजा परीक्षित ने कहा कि—

यह शुकदेव कहो समझाय। को वह रह्यो कन्दरा जाय॥
ताकी दृष्टि भस्म क्यों भयो। काने वाहि महा वर दयो॥

श्री शुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! इक्ष्वाकुवशी क्षत्री मान्धाता का बेटा मुचुकुन्द अति बली महाप्रतापी जिसका अरिदलन यश नौ खण्ड मे छाय रहा था एक समय सब देवता असुरों के सताये, निपट घबराये, मुचुकुन्द के पास आये और अति दीनता कर उन्हों ने कहा कि हे महाराज! असुर बहुत हैं अब तिनके हाथ से बच नहीं सक्ते ! वेग ही हमारी रक्षा करो। यह रीति परंपरा से चली आई कि जब २ सुर, मुनि, ऋषि, अबल हुए हैं, तब २ उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इतनी बात सुनते ही मुचुकुन्द उनके साथ हो लिया और जाके असुरों से युद्ध करने लगा। उनसे लडते २ कितने ही युग बीत गये, तब देवताओं ने मुचुकुन्द से कहा कि हे महाराज! हमारे लिये बहुत श्रम किया।

बहुत दिनन कीनो संग्राम। गयो कुटुम्ब सहित धनधाम॥
रह्यो न कोऊ यहाँ तिहारो। तातें अब निज घर पगु धारो॥

अब जहाँ तुम्हारा मन माने तहाँ जाओ। यह सुन मुचुकुन्द ने देवताओं से कहा कि हे कृपानाथ! मुझे कहीं पर कृपा करके ऐसा एकान्त ठौर बताइये जहाँ जाय कर मैं निश्चिन्तताई से सोऊँ और कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही देवताओं ने प्रसन्न हो मुचुकुन्द से कहा कि हे महाराज! आप धवलागिरि पर्वत की कन्दरा में जाय के शयन कीजिये, वहाँ तुम्हें कोई न जगावेगा। और जो कोई अनजाने वहां तुम्हें जगावेगा तो वह तुम्हारी दृष्टि को देखते ही जल बल कर राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि हे महाराज! ऐसे देवताओं से वर पाय मुचुकुन्द उस गुफा में जा कर सोया था। इससे उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जल कर क्षार हो गया। तब करुणानिधान कान्ह भक्तहितकारी ने मेघवरण चन्द्रमुख कमलनैन चतुर्भुज हो, शंख चक्र गदा पद्म लिये, मोरमुकुट मकराकृत कुण्डल वनमाला और पीताम्बर पहरे, मुचुकुन्द को दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप देखते ही वह साष्टांग प्रणाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि हे कृपानिधान! जैसे आप ने इस महा अन्धेरी कन्दरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे ही दया कर अपना नाम आदि भेद बताय मेरे मन का भ्रम दूर कीजिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुण हैं घने, वे किसी भांति गिने न जायँ कोई कितना ही गिने। पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनो। अब के वसुदेव के यहाँ जन्म लिया है, इससे मेरा नाम कृष्ण हुआ। मथुरापुरी में

सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भारा उतारा है और सत्रह बेर तेईस २ अक्षौहिणी सेना ले जरासंध युद्ध करने को चढ़ आया सो भी मुझसे हारा और यह कालयवन तीन करोड म्लेच्छ की भीड भाड से लडने को आया था सो तुम्हारी दृष्टि से जल मरा। इतनी प्रभु के मुख से सुन कर मुचुकुन्द को जब ज्ञान हुआ तब बोला कि हे महाराज! आपकी माया अति प्रबल है। उसने सारे संसार को मोह लिया है, इसी से किसी की कुछ भी सुधि बुधि ठिकाने नहीं रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत। ताते भारी दुख सहि लेत ॥
दोहा—चुने हाड ज्यों श्वानमुख, रुधिर चचोरे आप ॥
जानत नाही ते चुवत, सुख माने संताप ॥

हे महाराज! जो संसार में आया है, सो गृहरूपी अन्धकूप से बिना आपकी कृपा के निकल नहीं सकता। इससे मुझे भी चिन्ता है कि मैं गृह रूपी कूप से निकलूँगा या नहीं? यह सुन श्रीकृष्ण जी बोले कि सुन मुचुकुन्द! बात तो ऐसी ही है जैसी कि तू ने कही, परन्तु मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूँ, सो तू कर। तैंने राज पाकर भूमि, धन, स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं, सो बिना तप किये न छूटेंगे। इससे उत्तर दिशा में जाकर तपस्या कर के अपनी देह छोड़ दे। फिर ऋषि के घर में जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदार्थ पावेगा। महाराज! इतनी बात जब मुचुकुन्द ने सुनी, तब जाना कि कलियुग आया। यह समझ प्रभु से बिदा हो दण्डवत् कर परिक्रमा दे मुचुकुन्द तो बद्रीनाथ गया और श्रीकृष्ण जी ने मथुरा में आय के बलराम जी से कहा कि—

कालयवन को किया निकन्द । बद्रीदिशि पठयो मुचुकुन्द ॥
कालयवन की सेना घनी । तिन घेरी मथुरा आपनी ॥
आवहु तहाँ मलेच्छन मारैं । सकल भूमि का भार उतारैं ॥

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरी से निकल वहीं आये, जहा कालयवन का कटक खडा था। और आते ही उनसे युद्ध करने लगे। निदान लडते २ जब सेना प्रभु ने मारी, तब बलदेव जी से कहा कि हे भाई! अब मथुरा की सब सम्पत्ति ले द्वारिका को भेज दीजिये। तब बलराम जी बोले कि बहुत अच्छा! तब श्रीकृष्णचन्द्र ने मथुरा का सब धन निकलवाय भैंसो छकडो ऊँटो पर लदवाय द्वारिका को भेज दिया। इसी बीच मे फिर जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया। तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबरा के निकले और उसके सन्मुख जाके अपने को दिखा उसके मन का संताप मिटाने को भाग चले। तब मन्त्री ने जरासंध से कहा कि महाराज! आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरै, देखो वे दोनो भाई कृष्ण बलराम छोडके सब धनधाम अपना प्राण ले के तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पावों भागे चले जाते हैं। इतनी बात मन्त्री से सुन कर जरासंध भी पुकार कर यह कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौडा—

काहे डर के भागे जात । ठाढ़ो रहौ करौ कुछ बात ॥
परत उठत क्यों कपत भारी । आई है ढिग मीच तिहारी ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी ने भाग के यह रीति दिखाई तब जरासंध के मन से पिछला सब शोक चला गया और अति

प्रसन्न हुआ, ऐसा कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता है। आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते २ एक गौतमनामक पर्वत जो कि ग्यारह योजन ऊँचा था, तिस पर चढ़ और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये—

देखि जरासंध कहै पुकारी। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारी॥
अब किमि हमसों जाय पलाय। या पर्वत को देहु जलाय॥

इतना वचन जरासंध के मुख से निकलते ही सब असुरोंने उस पहाड़ को जा घेरा और नगर २ गाँव २ से काठ कबाड़ लाय उसके चारों ओर चुन दिया, तिस पर गुड़ गूदड़ घी तेल से भिगो के आग लगा दी। जब वह आग चोटी तक लहकी, तब उन दोनों भाईयों ने वहाँ से इस भाँति द्वारिका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा और पहाड़ भस्म हो गया। उस काल जरासन्ध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग मरा जान, अति सुख मान सब दल साथ ले मथुरापुरी में आया और वहाँ का राज ले नगर में ढिंढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन वसुदेव के पुराने मन्दिर थे सो सब ढहवाये और आप अपने नये बनवाये।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि हे महाराज! इस रीति से जरासन्ध को धोखा दे श्रीकृष्ण बलराम जी तो द्वारिका में जाय बसे और जरासन्ध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना साथ लेकर अति आनन्द करता निशंक हो अपने घर आया।

---

(८)

रुक्मिणी से विवाह

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि हे महाराज! रुक्मिणी नित्त सखियों के संग खेलती थी और दिन २ उसकी छवि दूनी होती थी। इसी बीच में एक दिन नारद जी कुण्डलपुर आये और रुक्मिणी को देख श्रीकृष्णचन्द्र के पास द्वारका जायके उन्हों ने कहा कि हे महाराज! कुण्डलपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप, गुण-शील की खान, लक्ष्मी के समान जन्मी है, सो तुम्हारे योग्य है। यह भेद जब नारदमुनि से सुन पाया तभी से रात दिन एक करके श्रीकृष्णचन्द्र जी रुक्मिणी का नाम गुण सुना सो कहता हूं। एक समय देश २ के कितने एक याचकों ने जाय के कुण्डलपुर में श्रीकृष्णचन्द्र का यश गाया, जैसे प्रभु ने मथुरा में जन्म लिया और गोकुल वृन्दावन में जाय, ग्वालबालों के संग मिल, बालचरित्र किया, और असुरों को मार भूमि का भार उतार, यदुबंशियों को सुख दिया था तैसे ही गाय सुनाया। हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर के निवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे कि जिनकी लीला हमने कानों से सुनी है तिन्हें कब नैनों से देखेंगे? इसी बीच में किसी याचकने सुन्दर ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय के प्रभु के चरित्र और गुण को गाया। उस काल में —

चढ़ी अटा रुक्मिणी सुन्दरी। हरि चरित्र सुन श्रवननि पुरी॥
अचरज करै भूलि मन रहै। फेरे उभक कर देखनि चहै॥

यों कहकर श्रीशुकदेव जी बोले हे पृथ्वीनाथ! इस भांति से श्रीरुक्मिणीजी ने प्रभुका यश और नाम सुना। तब उस

दिन से रात दिन आठ पहर, चौंसठ घडी, सोते-जागते, बैठे-खड़े, चलते-फिरते खाते पीते खेलते विन्हीं का ध्यान किये रहे और गुण गाया करे। नित भोरही उठ स्नान कर मट्टी की गौर बना, रोली, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य चढावें, मनावे और हाथ जोड़ सिर नाय उसके आगे कहा करै कि:—

मोपर गौरि कृपा तुम करौ। यदुपति दे मम दुःख हरौ॥

इसी रीति सदा रुक्मिणी रहने लगी। एक दिन सखियों के संग खेलती थी कि राजा भीष्मक उसे देख मन मे चिन्ता कर कहने लगा कि अब यह ब्याहने योग्य हुई, इसे शीघ्र ब्याह न दूँगा तो लोग हँसेंगे। कहा है कि जिसके घर मे कन्या बड़ी हो जाती है, उसका दान, पुण्य, जप तप करना वृथा है क्योंकि ये सब किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता जब तक कन्या के ऋण से उऋण न होय। यह विचार कर राजा भीष्मक अपनी सभा मे आकर सब मन्त्री और कुटुम्ब के लोगों को बुलाकर बोला कि भाइयो! कन्या ब्याहने योग हुई इसके लिये कुलवान, गुणवान्, रूपनिधान, शीलवान, कहीं वर ढूंढ़ना चाहिये।

इतनी बात के सुनते ही उन लोगों ने अनेक २ देशों के राजाओं के कुल, गुण, रूप और पराक्रम कह सुनाये। परन्तु राजा भीष्मक के चित्त मे किसी की बात कुछ न आई। तब उनका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म था, सो कहने लगा हे पिता! नगर चंदेरी का राजा शिशुपाल अति बलवान है, और सब भाँति हमारे समान है। तिससे रुक्मिणी की सगाई वहाँ कीजिये और जगत मे यश लीजिये। हे महाराज! जब उसकी भी बात राजा

अनसुनी की, तब तो रुक्मकेश नामक उनका छोटा
बोला कि:—

क्मणी पिता कृष्णको दीजै। वासुदेव सों सगाई कीजै ॥
ह सुनि भिष्मक हरषे गात। कही पूत तैं नीकी बात ॥
बालक सब सों अतिज्ञानी। तेरी बात भली हम मानी ॥

कहा है:—

दो०—छोटे बडेनि पूछिकै, लीजै मन परतीति।
सार वचन गह लीजिये, यही जगत की रीति ॥

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले कि यह तो रुक्मकेशने भली बात कही है क्यो कि यदुवंशियो मे राजा शूरसेन बडे यशस्वी और प्रतापी हुए हैं, तिन्ही के पुत्र वसुदेव जी है। सो कैसे हैं कि जिनके घर मे आदि पुरुष, अविनाशी, सकल देवन के देव श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने जन्म ले महाबली कंसादिक राक्षसों को मारा और भूमिका भार उतार यदुकुल को उजागर किया, और सब यदुवशियो समेत प्रजा को सुख दिया। ऐसे जो द्वारिकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनको जो रुक्मिणी दें तो जगत मे यश और वडाई लें। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि महाराज! यह तो तुमने भली विचारी। क्यो कि ऐसा बर और घर कहीं न मिलेगा। इससे उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचन्द्र को रुक्मिणी व्याह दीजिये। हे महाराज। जब सभा के सब लोगो ने कहा तब राजा भीष्मक का बडा वेटा जिसका नाम रुक्म था सो यह सुनि निपट झुँझलाय के बोला कि—

समझ न बोलत महागँवार। जानत नहीं कृष्ण व्यौहार ॥
गाय नन्द के रह्यो। तब अहीर सब काहू कह्यो ॥

कामरि ओढ़े गाय चराई। बन मे बैठि छाक तिन खाई॥

वही तो गँवार ग्वाल है, उसकी जात पाँत का क्या ठिकाना और जिसके वॉ किसी बात का भेद नहीं जाना जाता, उसे हम पुत्र किसका समझे। कोई नन्दगोप का जानता है, कोई वसुदेव का कर मानता है, पर आज तक यह भेद किसी ने नहीं पाया कि कृष्ण किसका बेटा है। इसी से जो जिसके मन मे आता है सो गाता है। हे महाराज! हमे सब कोई जानता व मानता है, और यदुबंशी राजा ही कब भये? क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बलकर उन्होने बड़ाई पाई। पहला कलंक तो अब छूटेगा। यह उग्रसेन का चाकर कहाता है, इससे सगाई कर क्या हम कुछ संसार मे यश पावेंगे? कहा है कि ब्याह, बैर और प्रीति समान से करिये तो शोभा पाइये। और जो कृष्ण को देंगे तो हम लोग कहेंगे कि ग्वाल का सारा, तिससे सब जायेगा नाम और यश हमारा।

हे महाराज! यह कह फिर रुक्म बोला कि नगर चंदेरी का राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है, उसके डर से सब थर थर काँपते हैं और परंपरा से उनके घर में राजगद्दी चली आती है। इससे अब उत्तम यही है कि रुक्मिणी उसी को दीजिये, और मेरे आगे कृष्ण का नाम भी न लीजिये। इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन पछताय पछताय के चुप हो रहे और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला। इसी बीच में रुक्म ने ज्योतिषी को बुलाया, शुभ दिन लगन ठहराय, एक ब्राह्मण के हाथ राजा शिशुपाल के यहाँ टीका भेज दिया। वह ब्राह्मण टीका लिये चला चला नगर चंदेरी में गया, राजा शिशुपाल की सभा में पहुँचा [illegible]

ब्राह्मण वेद पढ २ टेहले करवाते थे और दुन्दुभी बाजे बजते थे। द्वार पर सपल्लव केले के खंभे गाड २ सोने के कलश भर लोग धरते थे और तोरण बंदनवारें बांधते थे और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट बाट चौहट्टे झाड बुहार पट से पीटते थे। इस भांति से घर और बाहर सब तरफ धूम मच रही थी। उसी समय दो चार सखियों ने जाकर रुक्मिणी से कहा कि—

देख तोहि रुक्मि शिशुपालहि दई। अब तू रुक्मिणी रानी भई॥
बोली सोच नाय कर सीस। मन बच मेरे प्राण जगदीश॥

इतना कह रुक्मिणी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मण को बुलाय हाथ जोड उसकी बहुत सी विनती और बडाई कर अपना मनोरथ उसने सब सुनाय के कहा कि हे महाराज! मेरा संदेशा द्वारिका ले जाओ और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हें साथ ले आओ, तो तुम्हारा बडा गुण मानूंगी और यह जानूंगी कि तुमने ही दया करके मुझे श्रीकृष्ण वर दिया।

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मण बोला कि अच्छा तुम संदेशा कहो, मैं उसे ले जाऊंगा और श्री कृष्णचन्द्र को सुनाऊंगा। वे कृपानाथ हैं, जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊंगा। इतना वचन जब ब्राह्मण के मुख से निकला तब रुक्मिणी जी ने एक पाती प्रेम भरी लिख कर उसके हाथ दी और कहा श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को पाती देकर मेरी ओर से कहियो कि तुम्हारी दासी ने कर जोड़ अति विनती करके कहा है कि आप अन्तर्यामी हो, घट घट की जानते हो, आगे क्या कहूं, मैंने तुम्हारी शरण ली है, अब मेरी लाज तुम्हें है। जिस में लाज रहे सो कीजे और दासी को आय बेग दर्शन दीजे।

हे महाराज ! ऐसे कह सुन कर जब रुक्मिणी जी ने उस ब्राह्मण को बिदा किया। तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारिका को चला और हरि इच्छा से बात के कहते ही जा पहुँचा वहां जाय के देखे कि समुद्र के बीच में वह अद्भुत पुरी बनी हुई जिसके चहुँ ओर बड़े २ पर्वत वन उपवन शोभा दे रहे हैं, जिन में भाँति २ के पशु पक्षी बोल रहे हैं, और निर्मल जल भरे सुथरे सरोवर में कमल गहगहाय रहे हैं, जिन पर भौंरों के झुण्ड गूंज रहे हैं, और तीर पै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे हैं, कोसों तक अनेकों प्रकार के फल, फूलों की बाड़ियां चली गई हैं कितनी बाड़ियों पर पनबाड़ियां लहलहा रही हैं, बावड़ी इनारों पै खड़े हो माली मीठे सुरों से गाय २ रहट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीचे नीर खींच रहे हैं, और पनघटों पर पनिहारियों के ठट्ट के ठट्ट लगे हुए हैं।

यह छवि निरख हरष के ब्राह्मण जब आगे बढ़ा, तब देखता क्या है कि नगर के चारों ओर अति ऊँचा कोट है जिसमें चार फाटक हैं जिन में कञ्चन खचित मंदार किवाड़ लगे हुए हैं और पुरी के भीतर चांदी सोने के मणिमय मन्दिर व मन्दिर मन्दिर ऐसे ऊचे हैं कि मानों आकाश से बातें कर रहे [illegible] हैं जिनके कलस कलसियां बिजली सी चमकती हैं, बरन बरन [illegible] ध्वजा व पताकाएं फहराय रही हैं। खिड़की झरोखों जालियों सुगन्ध की लपटें आय रही। द्वार २ पर कदली [illegible] और कञ्चन कलस जल भरे धरे हैं, तोरण बन्धे हैं और घर २ आनन्द के बाजे बज रहे हैं

पुराण और हरि चरचा हो रही है। अठारह बरन सुख चैन से वास करते है। सुदर्शनचक्र उस पुरी की रक्षा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! ऐसी जो सुन्दर सुहावनी द्वारिकापुरी है, तिसे देखता देखता वह ब्राह्मण राजा उग्रसेन के सभा मे जा खडा हुआ। और आशीश देकर वहाँ इसने पूछा कि श्री कृष्णचन्द्र जी कहाँ विराजते हैं? तब किसी ने हरि का मन्दिर बता दिया। वह ज्यों द्वार पर जाय खडा हुआ, त्योंही द्वारपालो ने इन्हे देख दण्डवत कर पूछा कि—

को हो आप कहाँ ते आये। कौन देश की पाती लाये॥

यह सुनकर वह बोला कि मै ब्राह्मण हूँ और कुण्डलपुर का रहने वाला जो भीष्मक है, उसकी कन्या जो रुक्मिणी है उसकी चिट्ठी श्रीकृष्णचन्द्र को देने आया हूँ। इतनी बात के सुनते ही पौरियो ने कहा कि महाराज! मन्दिर मे पधारिये श्री कृष्णचन्द्र सो ही सिंहासन पर विराजते हैं। यह वचन सुनकर वह ब्राह्मण ज्यो भीतर गया त्यो हरी ने देखते ही सिंहासन से उतर दण्डवत करि अति आदर व मान किया और सिंहासन पर बिठाय चरण धोय चरणामृत लिया फिर ऐसे सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करता है। निदान प्रभु ने सुगन्धित उबटन तेल लगाय नहलाय धुलाय पहले तो उसे षटरस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा देके चन्दन [illegible] माला पहिराय मणिमय मन्दिर मे ले जा कर [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र ने बिठाया। हे महाराज! [illegible] सो गये।

का विवाह रच दीजिये। महाराज! यह बात ठहर चुकी थी कि इस में रुक्म ने भाँजी मार रुक्मिणी की सगाई शिशुपाल से की है, और वह असुर दल साथ ले ब्याहने को चढ़ा है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे पृथ्वीनाथ! ऐसे वह ब्राह्मण ने समाचार कह रुक्मिणी की चिट्ठी हरि के हाथ में दी। तब प्रभु ने अति हित से पाती ले छाती लगाय ली और पढ़कर प्रसन्न हो ब्राह्मण से कहा कि हे देवता! तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल असुरों को मार उस का मनोरथ पूरा करूँगा। यह सुनकर ब्राह्मण को धीरज हुआ परन्तु हरि रुक्मिणी का ध्यान कर चिन्ता करने लगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजा! श्रीकृष्णचन्द्र ने ऐसे उस ब्राह्मण को ढारस बँधाय फिर कहा कि—

दोहा— जैसे घिस के काठ ते, काढ़हिं ज्वाला जारि।
ऐसे सुन्दरि लायहौं, दुष्ट असुर दल मारि॥

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र आभूषण मनमाने पहने और राजा उग्रसेन के पास जायके प्रभु ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे महाराज! कुण्डलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिखा है और पुरोहित से साथ मुझे अकेला बुलाया है। जो आज्ञा दें तो मैं जाऊँ और उनकी बेटी ब्याह लाऊँ?

सुनकर उग्रसेन यों कहैं। दूर देश कैसे मन रहै॥
वहाँ अकेले जान मुरारी। मत काहू सों उपजै रारी॥

तब तुम्हारा समाचार हम यहाँ कौन पहुँचावेगा? यह कह फिर उग्रसेन बोले अच्छा तुम वहाँ जाना चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ और ब्याह कर

शीघ्र चले आओ। वहाँ किसी से झगड़ा न करना। क्योंकि तुम चिरंजीव रहोगे तो ब्याह हो ही जायगा। यह आज्ञा पाते ही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे महाराज! तुमने सच कहा है, परन्तु मैं आगे चलता हूँ आप कटक समेत बलराम जी को पीछे से भेज दीजिये।

ऐसे कह हरि उग्रसेन वसुदेव से बिदा हो उस ब्राह्मण के निकट आये और रथ समेत अपने दारुण सारथी को बुलवाया। वह भी प्रभु की आज्ञा पाते ही चारो घोड़े का रथ तुरत जोत लाया। तब श्रीकृष्णचन्द्र उस पर चढ़ और ब्राह्मण को पास बिठाय द्वारिका से कुण्डलपुर को चले। ज्यों नगर के बाहर निकले त्यों देखते क्या हैं कि दाहिनी ओर मृग के झुण्ड चले जाते हैं। और सन्मुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष्य लिये गर्जते आते हैं। यह शुभ सुगन देख ब्राह्मण अपने जी में विचार कर बोला कि हे महाराज इस सगुन के देखने से मेरे विचार मे यह आता है कि जैसे ये अपना काज साध के आते हैं, तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध करके आवोगे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि आपकी कृपा से। इतना कह हरि वहाँ से आगे बढ़े और नये नये देश, नगर, गाँव देखते देखते कुण्डलपुर में जा पहुँचे। वहाँ देखते हैं कि ठौर ठौर पर ब्याह का सामान जो सजाय धरी हैं, तिससे नगर की छवि और ही हो रही है।

झारे गली चौहट छावें। चोआ चन्दन सों छिरकावें॥
पाये सुपारी झौरा किये। बिचबिच कनक नारियर दिये॥
हरे पात फल फूल अपारा। ऐसो घर घर बन्दनवारा॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुढम कलस कंचन के बने

और घर घर मे आनन्द हो रहा है। हे महाराज! यह नगर की शोभा थी, और राजमन्दिर मे जो कुतूहल हो रहा था, उसका वर्णन कोई क्या करेगा वह देखते ही बनि आवेगा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने सब नगर देखकर आके राजा भीष्मक की बाडी मे डेरा किया। और शीतल छांह मे बैठ ठण्डे हो उस ब्राह्मण से कहा कि देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिणी जी को सुनाओ जो हम फिर उस का उपाय करे। तब वह ब्राह्मण बोला कि हे कृपानाथ! आज ब्याह का पहिला दिन है, अत. राजमंदिर मे बडी धूमधाम हो रही है। मैं जाता हूँ परन्तु रुक्मिणी को अकेला पाकर आपके आने का भेद कहूँगा। यह कह ब्राह्मण वहा से चला। हे महाराज! इधर से हरि तो यो चुपचाप अकेले पहुँचे और उधर से राजा शिशुपाल जरासंध समेत असुरदल लिये इस धूम से आया कि जिसका वारापार नही और इतनी भीड संग कर लाया कि जिसके बोझ से शेषनाग डगमगाने लगे और पृथ्वी उछलने लगी। उसके आन की सुधि पाकर राजा भीष्मक अपने मन्त्री और कुटुम्ब के लोगो समेत आगे बढ लेने गये और बडे आदर मान से आगौनी कर सबको पहरावन पहराय रत्न जटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोडे दे उन्हे नगर मे ले आये और जनवासा दिया। फिर खान पान का सामान किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे महाराज! अब आगे की कथा कहता हूं। आप चित्त लगाय के सुनिये। जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका से चले तिसी समय यदुवंशियों ने राजा उग्रसेन से कहा कि हे महाराज! हमने सुना है कि

कुण्डलपुर में राजा शिशुपाल, जरासंध समेत सब असुर-दल ले ब्याहने को आया है और हरि अकेले गये हैं। इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्ण जी से और उससे युद्ध होगा। यह बात जान के भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहाँ कैसे रहे? हमारा मन तो नहीं मानता। आगे जो आप आज्ञा कीजिये, सो करें?

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय घबराय बलराम जी को निकट बुलाय के कहा कि तुम हमारी सब सेना लेके श्रीकृष्ण के पहुँचने से पहले ही शीघ्र कुण्डलपुर जाओ उन्हें अपने संग करके ले आओ। राजा की यह आज्ञा पाते ही बलदेवजी छप्पन करोड़ यादव जोड़ के कुण्डलपुर को चले। उस काल में कटक के हाथी काले, धौले, धूमर, बादल दलसे जनाते थे और उनके श्वेत २ दांत बक-पंक्ति से थे, धौंसा मेघ सा गर्जता था और शस्त्र बिजली से चमकते थे। रंग रंग के बागे पहिरे घुड़चढ़ों के टोलके टोल जिधर तिधर दृष्टि आते थे। रथों के तांते झनझनाते चले जाते थे। तिनकी शोभा निरख निरख हरष हरष देवता अति हित से अपने विमानों पर बैठे आकाश से फूल बरसाय २ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की जै मनाते थे। इसी बीच में सब दल लिये चले २ कुण्डलपुर में हरि के पहुँचते ही बलराम जी भी जा पहुँचे। यह सुनाय श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र रूपसागर जगत उजागर तो इस भाँति कुण्डलपुर पहुँच चुके थे परन्तु रुक्मिणी इनके आने का समाचार न पाकर'—

बिकल बदन चितवै चहुँ ओर। जैसे चन्द्र मलिन भये भोर॥
अति चिंता सुन्दरि जिय बाढ़ी। देखे ऊँच अटा पर ठाढ़ी॥

चढ़ि २ उभके खिरकी द्वार। नैननि ते छाँडे जल धार!

दोहा—बिलखि बदन अति मलिन मन; लेत उसासनि सास।
व्याकुल बरषा नैन जस, सोचति कहति उदास॥

कि अब तक हरि क्यों नहीं आये ? जिनका नाम तो अन्तर्यामी है। ऐसी मुझ से क्या चूक पड़ी है जो अब तक उन्होंने मेरी सुध न ली। क्या ब्राह्मण वहां नहीं पहुँचा ? के हरिने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीति न करी ? कि जरासंध का आना सुन प्रभु न आये ? कल ब्याह का दिन है और असुर आय पहुँचा है। जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरिबिन कैसे रहेगा ? जप तप नेम धर्म कुछ आड़े न आया, अब क्या करूँ किधर जाऊँ ? अपनी बरात ले आया शिशुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीन दयाल।

इतनी बात जब रुक्मिणी के मुँह से निकली, तब एक सखी ने तो कहा कि दूर देश, बिन पिता बन्धु आज्ञा हरि कैसे आवेंगे ? फिर दूसरी बोली कि जिसका नाम अन्तर्यामी दीन दयाल है वे बिन आये न रहेंगे, रुक्मिणी तू धीरज धर व्याकुल न हो। मेरा मन यह हामी भरता है कि अभी आय कोई यह कहता है कि हरि आये। हे महाराज ! ऐसे वे दोनों आपस में बतकहाव कर ही रही थीं कि वैसे ब्राह्मण ने जाय, के असीस देकर कहा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने आय के राजवाड़ी में डेरा किया है और सब दल लिये बलदेव जी पीछे से आते हैं। ब्राह्मण को देखते और इतनी बात के सुनते ही रुक्मिणी के जी में जी आया और उन्होंने उस काल ऐसा सुख माना कि जैसा तपस्वी तप का फल पाये सुख मानता है।

आगे श्री रुक्मिणी जी हाथ जोड़ शिर झुकाय उस ब्राह्मण के सन्मुख कहने लगीं कि आज तुमने यह हरि का आगमन सुनाय मुझे प्राणदान दिया, मैं इसके पलटे क्या दूँ ? जो त्रिलोकी की माया दूँ तो भी तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हूँ । ऐसे कह मनमार सकुचाय रहीं । तब वह ब्राह्मण अति सन्तुष्ट हो आशीर्वाद देकर वहाँ से उठके राजा भीष्मक के पास गया और उसने श्रीकृष्ण के आने का सब ब्योरा समझाय के कहा । जिसके सुनते ही वे प्रमाण राजा भीष्मक उठ धाया और चला २ वहा आया जहाँ बाडी मे श्रीकृष्ण बलराम सुखधाम विराजते थे । आते ही साष्टांग प्रणाम कर सन्मुख खड़े हो हाथ जोड के राजा भीष्मक ने कहा कि —

मेरे मन वच हो तुम हरी । कहा कहो जो दुष्टन करी ॥

अब मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, जो आपने आय दर्शन दिया । यह कह प्रभु के डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आय के चिंताकर के ऐसे कहने लगा कि:—

हरि चरित्र जाने सब कोई, क्या जाने अब कैसी होई ॥

और जहाँ श्रीकृष्ण बलदेव थे, तहाँ सम्पूर्ण नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सिर नाय प्रभु का यश गाय २ सराहि २ आपस मे यह कहते थे कि रुक्मिणी के योग्य वर श्रीकृष्ण ही हैं । बिधना ऐसी करे कि यह जोडो जुड़े और चिरजीव रहे । इसी बीच मे दोनो भाइयो के जी में जो कुछ आया तो नगर देखने चले । उस समय में दोनो भाई जिम हाट बाट चौहट्ट मे हो कर जाते थे, वहाँ नर-नारियो के ठट्ट के ठट्ट लग जाते थे और वे इनके ऊपर चोआ, चन्दन, गुलाबनीर, छिड़क २ फूल

बरसाय २ हाथ बढ़ाय २ प्रभु को आपस मे यह कह कर बताते थे कि—

नीलोपट ओढ़े बलराम । पीताम्बर पहने घनश्याम॥
कुण्डल चपल मुकुट सिरधरे । कमल नयन चाहत मनहरे॥

और ये देखते जाते थे। निदान सब नगर और राजा शिशुपाल का कटक देख ये तो अपने दल मे आगे और इनके आन का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि सच कहो, कृष्ण यहाँ किसका बुलाया आया? यह भेद मैने नहीं पाया, बिन बुलाये वह कैसे आया, ब्याह का काज है सुख धाम, इसमे इसका है क्या काम। ये दोनो कपटी कुटिल जहाँ जाते हैं, वहाँ ही उत्पात मचाते हैं, जो तुम भला अपना भला चाहो तो तुम मुझ से सत्य कहो वे किसके बुलाये आये हैं।

हे महाराज! रुक्म ऐसे पिता को समझाय वहाँ से उठ कर [illegible] करता हुआ वहाँ गया, जहाँ राजा शिशुपाल और जरासन्ध अपनी सभा मे बैठे थे। वहाँ जाकर उसने कहा कि यहाँ रामकृष्ण भी आये हैं अतः तुम अपने लोगों को जता दो, जो सावधानी से रहें। इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही राजा शिशुपाल तो [illegible], [illegible] कहने लगा मन ही मन [illegible]। और जरासन्ध कहने लगा सुना जो? जहाँ ये दोनों आते [illegible] उपद्रव मचाते हैं। ये महाबली और कपटी हैं, [illegible], ये कभी किसी से लड़कर नहीं हारे। [illegible] है। मन में [illegible]।

आया तब यह भाग के पर्वत पै जा चढ़ा, जब मैने उस मे आग लगाई तब यह छलकर द्वारिका को चला गया।

याको काहू भेद न पायो। अब ह्यां करन उपद्रव आयो॥
है यह छली महाछल करै। काहू पै नहिं जान्यो परै॥

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजिये जिससे हम सब की बात रहै। इतनी बात जरासंध ने कही तब रुक्म बोला कि वे क्या वस्तु हैं जिनके लिये तुम इतने भयभीत हो रहे हो ? तिन्हें तो मैं भली भाँति जानता हूँ कि वन वन गाते नाचते वेनु बजाते धेनु चराते थे। गँवार बाल युद्ध विद्या की रीति क्या जाने, तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन में मत करो। हम सब यदुवंशियो समेत श्रीकृष्ण बलराम को छण भर मे मार हटावेंगे।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज ! उस दिन रुक्म तो जरासंध और शिशुपाल को समझाय बुझाय ढाढ़स बँधाय अपने घर आया और उन्होने सात पांच कर रात गवांई। भोर होते ही इधर राजा शिशुपाल और जरासध तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम मे लगे और उधर राजा भीष्मक के यहा भी मङ्गलचार होने लगे। इतने मे रुक्मिणी जी ने उठते ही एक ब्राह्मण के हाथ श्रीकृष्णचन्द्र को कहला भेजा कि हे कृपा-निधान ! आज ब्याह का दिन है, दो घड़ी दिन रहे, नगर के पूरब देवी का मदिर है, तहा मै पूजा करने जाऊगी। मेरी लाज तुम्हारे हाथ है, जिसमे रहे सो करियेगा।

आगे एक पहर दिन चढ़े सखी सहेली और कुटुम्ब की स्त्रियाँ आई। विन्होने आते ही पहले तो आँगन मे गजमोतियो का चौक पुरवाय, कञ्चन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिसपर

मिलने की चिन्ता किये ज्यों वहाँ से निश्चिन्त होकर चलने को हुई त्यों श्रीकृष्णचन्द्र जी अकेले रथ पर बैठे वहाँ पहुंचे जहाँ रुक्मिणी के साथी सब योधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खड़े थे। इतना कह श्रीशुकदेव जी बोले कि—

दोहा—पूजि गौरि जबही चली, एक कहति अकुलाय।
सुनि सुन्दरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय॥

यह एक बात सखी ने (प्रभु के रथ की खबर) सुन, राजकन्या से कहा। यह सुन कर वह आनन्दकर फूली अंग न समाती थी और सखी के हाथ पर हाथ दिये सुन्दर मोहिनीरूप किये, हरि के मिलने की आस किये, कुछ २ मुस्कराती हुई सब के बीच में मन्दगति से जाती थी कि जिस की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती। आगे श्रीकृष्ण को देखते ही सब रखवाले भूल से खड़े ही रहे और अन्तरपट उन के हाथ से छूट पड़ा। इतने में मोहिनी रूप से रुक्मिणी जी को उन्होंने देखा तो और भी मोहित हो ऐसे शिथिल हुए कि जिन्हें अपने तन, मन की भी सुधि न थी।

हे महाराज! उस काल में सब राक्षस तो चित्र के से खड़े खड़े देख ही रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्र सब के बीच में से हो कर रुक्मिणी के पास रथ बढ़ाय के जाय खड़े हुये। तब प्राणपति को देखते ही उसने सकुचाय कर मिलने को ज्यों हाथ बढ़ाया त्यों प्रभु ने हाथ से उठाय रथ पर बैठाय लिया।

काँपत गात सकुच मन भारी। छाँड सबन हरि संग सिधारी
ज्यो बैरागी छांड़ै गेह। कृष्ण चरण सों करै सनेह॥

हे महाराज! रुक्मिणी जी ने तो जप, तप, व्रत आदिक

रुक्मिणी को बिठाय सात सुहागिनों से तेल चढ़वाया। पीछे सुगन्ध उबटन लगाय नहवाय धुलाय उसे सोलह सिंगार करवाय बारह आभूषण पहराय ऊपर से सारी चोली चढ़ाय बन्नो बनाय के बिठाया। इतने मे घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया। उस काल मे रुक्मिणी अपनी सब बाल सखी सहेलियों को साथ ले गाजे बाजे से देवी की पूजा करने को चलीं, तब राजा भीष्मक ने राजसेवक लोगों को रखवाली के लिये उनके साथ कर दिया।

यह समाचार पाकर कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा शिशुपाल ने भी श्रीकृष्णचन्द्र के डर से अपने बड़े बड़े सामन्त शूरवीर योद्धाओं को बुलाय के सब भाँति से ऊँच नीच समझाय के रुक्मिणी जी की चौकसी को भेज दिया। ये भी आकर अपने २ शस्त्र सभाल कर राजकन्या के संग हो लिये। उस बिरियाँ रुक्मिणी जी सब सिंगार किये सखी सहेलियों के झुण्ड के झुण्ड लिये अन्तरपटकी ओट में ओर कालेर राक्षसों के कोट में जाते समय ऐसी शोभायमान लगती थी कि जैसे श्यामघटा के बीच में तारामण्डल समेत चन्द्रमा। निदान कितनी एक बेर में चलीं २ देवी के मन्दिर पहुँचीं, वहाँ जाय हाथ पाँव धोय आचमन कर शुद्ध होय पहले तो चन्दन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर श्रद्धा समेत वेद की विधि से देवी की पूजा की। पीछे ब्राह्मणियों को इच्छाभोजन करवाय सुथरी तियल पहराय रोली की खौर और अक्षत लगाय उन्हें दक्षिणा दी और उनसे असीस ली।

आगे देवी की परिक्रमा दे वह चन्द्रमुखी, चंपकबरनी, मृगनैनी, पिकबैनी, गजगामिनी, सखियों को साथ ले, हरि के

मिलने की चिन्ता किये ज्यों वहाँ से निश्चिन्त होकर चलने को हुई त्यों श्रीकृष्णचन्द्र जी अकेले रथ पर बैठे वहाँ पहुचे जहाँ रुक्मिणी के साथी सब योधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खडे थे। इतना कह श्रीसुकदेव जी बोले कि—

दोहा—पूजि गौरि जबहीं चली; एक कहति अकुलाय।
सुनि सुन्दरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय॥

यह एक बात सखी ने (प्रभु के रथ को खबर) सुन, राजकन्या से कहा। यह सुन कर वह आनन्दकर फूली अग न समाती थी और सखी के हाथ पर हाथ दिये सुन्दर मोहिनीरूप किये, हरि के मिलने की आस किये, कुछ २ मुस्कराती हुई सब के बीच में मन्दगति से जाती थी कि जिस की शोभा कुछ बरनी नही जाती। आगे श्रीकृष्ण को देखते ही सब रखवाले भूल से खड़े ही रहे और अन्तरपट उन के हाथ से छूट पडा। इतने में मोहिनी रूप से रुक्मिणी जी को उन्होंने देखा तो और भी मोहित हो ऐसे शिथिल हुए कि जिन्हें अपने तन, मन की भी सुधि न थी।

हे महाराज! उस काल मे सब राक्षस तो चित्र के से खड़े खड़े देख ही रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्र सब के बीच मे से हो कर रुक्मिणी के पास रथ बढ़ाय के जाय खड़े हुये। तब प्राणपति को देखते ही उसने सकुचाय कर मिलने को ज्यों हाथ बढ़ाया त्यों प्रभु ने हाथ से उठाय रथ पर बैठाय लिया।

काँपत गाढ़ सकुच मन भारी। छाँड सबन हरि संग सिधारी
ज्यो बैरागी छाड़ै गेह। कृष्ण चरण सों करै सनेह॥

हे महाराज! रुक्मिणी जी ने तो जप, तप, व्रत आदिक

पुण्य किये का फल पाया, और पिछला दुःख सब गँवाया, बैरी अस्त्र-शस्त्र लिये खडे मुख देखते ही रह गये। प्रभु उन के बीच से रुक्मिणी को ले कर ऐसे चले कि—

दोहा—ज्यों बहु झुण्डनि स्यार के, परे सिंह बिच आय।
अपनौ भक्षण लेई के, चले निडर घहराय॥

आगे से श्रीकृष्णचन्द्र के चलते ही बलराम जी पीछे से धौंसा दे सब सैन्यदल साथ ले जा मिले।

श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! कितनी एक दूर जाय के श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मिणी जी को सोच संकोचयुक्त देख कर कहा कि हे सुन्दरी! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं शङ्खध्वनि कर तुम्हारे मन का सब डर दूर करूँगा, और द्वारिका में पहुँच वेद की विधि से वरूँगा। यह कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय बाईं ओर बैठाया। ज्यों शङ्खध्वनि करी त्यों शिशुपाल और जरासन्ध के साथी सब चौंक पड़े। और यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिणी को हर ले गये।

इस रुक्मिणी-हरण को अपने उन लोगों के मुख से सुन कर जो कि चौकसी को राजकन्या के संग गये थे, राजा शिशुपाल और जरासन्ध अति क्रोध कर, झिलम टोप पहन, पेटी बाँध, सब शस्त्र लगाय, अपना २ कटक ले, लड़ने के लिये श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े और उनके निकट जाय के आयुध सँभाल कर ललकारा कि अरे! भागे क्यों जाते हो? खड़े रहो। शस्त्र पकड़ के लड़ो, जो क्षत्री शूरवीर हैं, वे रण में पीठ नहीं देते हैं। हे महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर कर सन्मुख हुये और दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे। उस काल रुक्मिणी जी अति भय मान

के घूँघट की ओट किये आँसू भर २ लम्बी सासें लेती थीं और प्रीतम का मुख निरख २ मन ही मन विचार यह कहती थीं की ये मेरे लिये इतना दुःख पाते हैं । अन्तर्यामी प्रभु रुक्मिणी के मन का भेद जान बोले कि सुन्दरि ! तू क्यों डरती है ? तेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मार भूमि का भार उतारता हू । तू अपने मन मे किसी बात की चिन्ता मत कर । इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा ! उस समय देवता अपने विमान में बैठे आकाश से देखते क्या हैं कि--

दोहा--यादव असुरन यो लरत, हात महा सग्राम ।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम ॥

उस समय मारूबाजा बजते हैं, कड़खैत कड़खा गाते हैं, चारण यश बखानते हैं, अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, भिड रहे हैं। इधर उधर के शूरवीर मिल २ के हाथ मारते हैं और कायर खेत छोड़ कर अपना जी ले भागते हैं। घायल खड़े भूमते हैं, कवध हाथ में तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं और लोथ पर लोथ गिरती हैं, तिनसे लोहू की नदी बह चली है, तिन में जहाँ तहा हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जान पड़े हैं और सूडें मगरसी प्रतीत होती हैं । उस समय महादेव भूत, प्रेत पिशाचोको संग लिये सिर चुन २ मुण्डमाल बनाय २ पहिनते हैं, और गिद्ध, शृगाल, कूकर, आपस मे लड़े २ लोथ खैंच २ लाते हैं और फाड़ २ के खाते हैं। कौवे धड़ो से आँखे निकाल ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखते ही बलराम जी ने सब असुरदल को यों काट डाला जैसे किसान खेती काट डालते हैं। आगे

और शिशुपाल सब दल कटायके कई एक घायल को संग लिये भाग के एक ठौर मे जा खड़े भये। तहाँ शिशुपाल ने बहुत अक्ष-ताय पछताय सिर डुला के जरासंध से कहा कि अब तो अपयश पायके और कुल मे कलक लगाय के संसार मे जीना उचित नहीं है। इससे आप आज्ञा दें तो मै रण मे जाय के लड मरूं।

नातर हौं करिहौ बनबास। लेंउँ योग छाडो सब आस।
गई आज पत अब क्यों जीजे। राखि प्राण क्यों अपयश लीजै।

इतनी बात सुनकर जरासन्ध बोले कि हे महाराज! आप ज्ञानवान हैं और सब बात भी जानते हैं। मैं तुम्हे क्या समझाऊँ! जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते। भले बुरे का करता कोई और ही है। मनुष्य का कुछ वश नहीं है, यह परवश व पराधीन है। जैसे काठकी पुतली को नटुआ जब नचावता है तब नाचती है, ऐसे ही मनुष्य करता के वश है वह जो चाहता है सो करता है। इससे सुख दुख मे हर्ष शोक न कीजे, सब सपना सा जान के जीजे! मैं तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरी पर सत्रह बेर चढ गया और इसी कृष्ण ने सत्रह बार मेरा सब दल हना किन्तु मैंने कुछ सोच न किया। और अठारहवीं बेर जब इस का दल मारा तब कुछ हर्ष भी न किया। यह भाग कर पहाड पर जा चढ़ा मैंने वहीं इसे फूँक दिया। न जानिये यह क्योंकर जिया। इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती है। इतना कह फिर जरासन्ध बोला कि हे महाराज! अब उचित यही है कि इस समय को टाल दीजिये, क्योंकि कहा है कि जो भागा बचेगा तो पीछे सब हो रहेगा। जैसे हमें हुआ कि सत्रह बार हार अठारहवीं बेर जीते। [illegible]

जिस में अपनी कुशल होय सो कीजै और हठको तो छोड ही दीजै।

हे महाराज! जब जरासन्ध ने ऐसे समझाय के कहा तब उसे कुछ धीरज हुआ और जितने घायल योधा बचे थे तिन्हें साथ ले अछता पछता कर जरासंध के सग हो लिया। ये तो यहाँ से यो हार के चले और जहाँ शिशुपाल का घर था तहाँ की बात सुनो कि पुत्र का आगमन विचार शिशुपाल की माँ ज्यो मंगलाचार करने लगी त्यो सन्मुख छीक हुई और दाहिनी आँख उसकी फडकने लगी। यह अशकुन देख उसका माथा ठनका कि इसी बीच मे किसी ने आय के क। कि तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई और दुलहिन भी न मिली। अब वहाँ से भाग के अपना जीव लिये आता है। इतनी बात के सुनते ही शिशुपाल-महतारी अति चिन्ता कर अवाक हो रही।

आगे शिशुपाल और जरासन्ध का भागना सुन रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा और सब को सुनाय के कहने लगा कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कर कहां जा सकता है? अभी जाय उसे मार रुक्मिणी को ले आऊँ तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो कुण्डलपुर में न आऊँगा। हे महाराज! ऐसे पैज कर रुक्म एक अक्षौहिणी सेना दल साथ में ले श्रीकृष्णचन्द्र से लड़ने को चढ़ धाया। और उसने यादवों का दल जा घेरा। उस काल में उसने अपने सैनिक लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो और मैं आगे जाय के कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ। इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुवंशियो से युद्ध करने लगे और वह रथ बढ़ाय के श्रीकृष्णचन्द्र के निकट जाय के

कर बोला कि अरे कपटी! गँवार! तू क्या जाने राज ब्योहार, बालकपन में जैसे तैंने दूध दही की चोरी करी है तैसे यहाँ भी तूने आय नारी हरी है।

ब्रजवासी हम नहीं अहीर। ऐसे कहकर लीने तीर॥
विषके बुझे लिये उनचीन। खैंच धनुष शर छोड़े तीन॥

उन बाणों को आते देख श्रीकृष्णचन्द्र ने बीच ही में काट दिया। फिर रुक्म ने और बाण चलाये, प्रभु ने भी काट गिराये। अपना धनुष सँभाल कई एक बाण ऐसे मारे कि रथ के घोड़े समेत सारथी उड़ गया और धनुष उसके हाथ से कट के नीचे गिरा, पुनि वह अति झुँझलाय के फेर खांडा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्णचन्द्र की ओर यों झपटा कि जैसे बावला गीदड़ गज पर आवे, कै ज्यों पतंग दीपक पर धावे, निदान आते ही उसने एक हाथ पर एक गदा चलाई कि प्रभु ने झट उसे पकड़ के बांध लिया और चाहा कि मारें इतने में रुक्मिणी बोली कि :—

मारो मत भैया है मेरो। छांडो नाथ तिहारो चेरो॥
मूरख अन्ध कहा यह जाने। लक्ष्मी कन्तहिं मानुष माने॥
तुम योगेश्वर आदि अनन्त। भक्त हेत प्रगट भगवन्त॥
यह जड़ कहा तुम्हें पहचाने। दीनदयाल कृपाल बखाने॥

इतना कह फिर कहने लगी कि साधु जन जड़ और बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह श्वान के भूकन पर ध्यान नहीं करता, और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है जोग। जिस ठौर तुम्हारे चरण पड़ते हैं, वहां के सब प्राणी आनन्द से रहते हैं।

यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मकका पुत्र दुःख पावे। हे महाराज! तुमने सम्बन्धी से भला हित किया जो पकडके बाँधा और खंग हाथ मे ले मारने को उपस्थित हुए। पुनि अति व्याकुल हो थरथराय डबडबाय बिसूर २ पावों पड़ गोद पसार कहने लगीं कि :—

वन्धु भीख प्रभु मोको देउ। इतनो यश जगमें तुम लेउ ॥

इतनी बातके सुनते रुक्मिणी जी की ओर देखने से श्रीकृष्णचन्द्र जी का कोप शान्त हुआ तब उन्हों ने उसे तो न मारा, परन्तु सारथी को सैन से इशारा किया, उसने झट इसकी पगडी उतार, मुश्क चढ़ाय मूंछ दाढ़ी और सिर मूँड सात चोटी रख, रथ के पीछे बाँध लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! रुक्म की तो श्रीकृष्ण जी ने यहाँ यह अवस्था की, और बलदेव जी वहाँ के सब के सब असुर दल को मार भगाय कर भाई के मिलने को ऐसे चले कि जैसे श्वेत गज कमलदल में कमलों को तोड खाय, बिखराय, अकुलाय के भागना होय। निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुंचे और रुक्म को बँधा देख श्रीकृष्ण जी से अति झुँझलाय बोले कि तुमने यह क्या काम किया जो साले को पकड़ के बाँधे। तुम्हारी कुटेव नहीं जाती।

बाँध्यो याहि करी बुधि थोरी। यह तुम कृष्ण सगाई तोरी।
औ यदुकुल को लीक लगाई। अब हम सो को करहि सगाई।

जिस समय यह युद्ध करने को आपके सन्मुख आया तब तुमने इसे समझाय के उलटा क्यों न फेर दिया? हे महाराज! ऐसे कह बलराम जी ने रुक्म को तो खोल कर

समझाय के अति शिष्टाचार कर विदा किया। फिर हाथ जोर अति विनती कर बलराम सुखधाम रुक्मिणी जी से कहने लगे कि हे सुन्दरी ! तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई, इसमें हमारी कुछ चूक नहीं है। यह उसके पूर्व जन्म के किये का फल है। और क्षत्रियों का धर्म भी है, कि भूमि, धर्म, त्रिया के काज करते हैं युद्ध, दल परस्पर साज। इस बात को तुम बिलगे मत मानो मेरा कहा सच्चा ही जानो, हार जीत भी इसके साथ ही लगी है और यह संसार दुःख का समुद्र है यहाँ आये पीछे सुख कहाँ ? परन्तु मनुष्य माया के वश में हो दुःख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग वियोग आदि को मन ही से मान लेते हैं। पर इसमें हर्ष शोक जीव को नहीं होता, तुम भाई के विरूप होने की चिंता मत करो, क्योंकि ज्ञानी लोग जीव को अमर तथा देह का नाश कहते हैं। इस वचन के अनुसार देह की पत जाने से कुछ जीव की प्रतिष्ठा नहीं गई।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे धर्मावतार ! जब बलदेव जी ने ऐसे रुक्मिणी को समझाया तब:—

दो०—सुनि सुन्दरि मन समुझि के, कियो जेठ की लाज ॥
सैन माहिं पियसों कहत, हाँकहु रथ ब्रजराज ॥
घूँघट ओट बदन को करै। मधुर वचन हरिसों उच्चरै ॥
सन्मुख ठाढ़े हैं बलदाऊ। अहो कन्त रथ वेग चलाऊ ॥

इतने वचन रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही इधर तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रथ द्वारिका की ओर हाँका और उधर रुक्म अपने लोगों में आय अति चिन्ता कर कहने लगा कि

मैं कुण्डलपुर से यह पैन करके आया था अभी जाय के कृष्ण बलराम को सब यदुवंशियों समेत मार, रुक्मिणी को ले आऊँगा। सो मेरा प्रण पूरा न हुआ और उलटी अपनी पत खोई, अब जीता न रहूँगा। इस देश और गृहस्थाश्रम को छोड बैरागी हो कहीं जा मरूँगा।

जब रुक्म ने ऐसा कहा, तब उसके साथी लोगों मे से कोई बोला कि हे महाराज! तुम महावीर और बड़े प्रतापी हो किन्तु तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये तो विन के भले दिन थे। अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये। नहीं तो, आपके सन्मुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है। तुम सज्ञान हो ऐसी बात विचारते हो? कभी हार होती है और कभी जीत, परन्तु शूरवीरों का धर्म है कि साहस नहीं छोडते। भला रिपु आज बच गया तो क्या, फिर मार लेंगे। हे महाराज! जब विनों ने यों रुक्म को समझाया तब वह यह कहने लगा कि सुनो—

हार्यो बनमो औ पत गई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जन्म नही कुण्डलपुर जाऊँ। बरन और ही गांव बसाऊँ॥
यो कह उन इक नगर बसायौ। सुत दारा धन तहाँ मँगायौ॥
ताको धर्यौ भोजकटु नाम। ऐसे रुक्म बसायौ गाम॥

हे महाराज। उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से बैर कर वहाँ रहा और उधर श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जो चले २ द्वारिका के निकट आय पहुचे।

उडी रेणु आकाश जु छाई। तबहीं पुरवासिन सुध पाई॥
दो—आवत हरि जाने जबहि, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भई तिहुँ लोक की, कही कौन पै

मेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने में होता है, सोई फल हरि कथा कहने सुनने मे मिलता है।

---

(१०)

राजसूय-यज्ञ और दुर्योधन का मान-मर्दन

श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि तुम हस्तिनापुर मे राजा युधिष्ठिर के यहा राजसूय यज्ञ मे शीघ्र आओ। हे महाराज! इतना वचन श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये, तितना बात की बात मे लाकर उपस्थित किया। उन्हे ले और सब से बिदा होकर अपने अपने देश को गये और श्रीकृष्ण जी भी सहदेव को साथ लेकर भीम व अर्जुन सहित यहा से चले आनन्दमङ्गल से हस्तिनापुर मे आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाकर जरासन्ध के मारने का समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने का हाल ब्योरे समेत कह सुनाया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के हस्तिनापुर मे पहुँचते व सब राजा भी अपनी २ सेना व भेंट सहित आन पहुँचे और राजा युधिष्ठिर की भेंट कर श्रीकृष्णचन्द्र जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे और यज्ञ के मण्डप मे आकर उपस्थित हुए।

श्रीशुकदेव जी बोले, हे महाराज! युधिष्ठिर ने जैसे यज्ञ किया और शिशुपाल मारा गया, सो सब कथा मै कहता हूँ तुम चित दे कर सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के आने हो गये, जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रमावंशी

हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र और युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति से शिष्टाचार करके समाधान किया और हर एक को यज्ञ का एक एक काम सौंपा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे महाराज! भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सहित हम पाँचो भाई तो राजाओं को साथ लेकर ऊपर की टहल करें और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ का आरम्भ कीजिये। हे महाराज! जो जो वस्तु यज्ञ मे चाहिये, सो सो आज्ञा कीजिये। हे महाराज। इस बात के सुनते ही ऋषि ब्राह्मणो ने ग्रन्थ देख कर यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी और राजा ने भी वही वस्तु मँगवा कर उनके आगे धरवा दी। अनन्तर ऋषि, मुनि और ब्राह्मणों ने मिल कर यज्ञ की वेदी रची तथा चारों वेद के ऋषि, मुनि, ब्राह्मण वेदी के बीच में आसन बिछाय कर जा बैठे और द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े २ राजा थे वे भी आय बैठे। ब्राह्मण ने स्वस्ति-वाचन कर के गणेश पुजवाया, और कलस स्थापन किया। तब राजा ने भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों का वरण किया और उन्होंने वेदमन्त्र पढ़कर सब देवताओं का आवाहन किया और राजा से यज्ञ का संकल्प करवाया, होम कर्म आरम्भ किया। हे महाराज! मंत्र पढ़ कर ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आहुति देने लगे। उस समय ब्राह्मण वेद पाठ करते थे और सब राजा होम की सामग्री ला ला कर देते थे और राजा युधिष्ठिर होम करते थे। इस प्रकार से निर्विघ्न यज्ञ पूर्ण हुआ, राजा ने पूर्णा-

श्रीसेठिया ... पुस्तकालय ।
बीकानेर ।

केशर की खीर की, फूलों के हार पहिराय, सुगन्ध लगाय, यथा योग्य राजा ने सब की मनुहार की। श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज !

हरि पूजत सब को सुख भयो। शिशुपालहिं को शिर भुनयो ।।

कितनी एक बेर तक तो वह शिर झुकाये मनही मन कुछ सोच विचार करता रहा। निदान कालवश हो कर अति क्रोध कर के सिंहासन से उतर कर सभा के बीच मे निःसंकोच भाव से निडर होकर बोला कि इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बडे २ ज्ञानी व मानी हैं, परन्तु इस समय सब की गति मति मारी गई है। क्योंकि बडे २ मुनीश बैठे रहे और नन्दगोप के सुत की पूजा भई और कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज में जन्म लेकर ग्वालो की जूठी छाछ खाई, तिसकी इस सभा में प्रभुताई बडाई ।

ताहि बडो सब कहत अचेत। सुरपति को बलिकागाहि देत ।।

जिसने गोपी ग्वालो से स्नेह किया, इस सभा मे तिसही को सब से बड़ा साधू बनाय दिया। जिसने दूध, दही, माखन घर २ चुराय खाया, उसी का यश सब ने मिलकर माना। बाट व घाट में जिसने लिया दान, उसी का यहाँ हुआ सन्मान। जिसने सब को छल से मारा, सब ने एक मता कर के उसी को पहले तिलक दिया, ब्रज में से इन्द्र की पूजा उस ने उठाई और पर्वत की पूजा उत्तम ठहराई। पुनि पूजा की सब सामग्री गिरि के निकट लिवाय ले जा कर ईश्वर को मिस करके आप ही खाई, तौ भी उसे जरा सी लाज न आई। जिस के जाति-पाति और माता पिता व कुल धर्म का नहीं ठिकाना, उसी को अलख

मिलने से इस की एक आंख और दो वांह गिर पड़ेंगी, यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन कर इस की माँ महादेवी जो कि शूरसेन की वेटी वसुदेव की वहिन व हमारी फूफी थी अति उदास भई और आठों पहर पुत्र ही की चिन्ता में रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर मथुरा में आई और इसे सबसे मिलाया। जब यह मुझसे मिला, तव इस की एक आंख और दोनों वाँह गिर पडी। जब फूफी ने मुझे बचन बद्ध करके कहा कि इसकी मौत तुम्हारे हाथ में है, किन्तु तुम इसे मत मारियो। मैं यह भीख तुमसे मागती हू। तब मैंने कहा कि अच्छा, सौ अपराध हम इनके न गिनेंगे, इसके उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे। हम से यह वचन ले फूफी सब से विदा हो, इतना कह कर पुत्र सहित अपने घर गई कि यह सौ अपराध ही क्यों करेगा, जो कृष्ण के हाथ मरेगा। हे महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं को उन लकीरों को गिना के जो एक २ अपराध पर खैंची थी मन का भ्रम मिटाया। जब लकीरो को गिना तो सौ से बढ़ती हुई तभी प्रभु ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी और उसने झट शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके धड़ से ज्योति निकली, सो एक बार तो आकाश को धाई, फिर आकर सबके देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र के मुख में समाई। यह चरित्र देख, सुर, नर, मुनि, जयजयकार करने और पुष्प वर्षाने लगे। उस काम में श्री मुरारि भक्तहितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन, राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि हे महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी, सो मुझे समझाय के कहिये। श्रीशु-

तो निष्कपट यज्ञ की टहल करते थे, परन्तु एक दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इससे वह एक की ठार अनेक उठ ता था। उसने निज मन में यह बात ठान के ऐसा काम किया कि इनका भण्डार टूटे और अप्रतिष्ठा हो, परन्तु भगवान की कृपा से अप्रतिष्ठा न होकर यश होता था। वह भी नहीं जानता था कि मेरे हाथ मे चक्र है। एक रुपया दूँगा तो चार इक्ट्ठे होंगे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! अब आगे की कथा सुनिये। श्रीकृष्णचन्द्र जी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय, पिलाय, वस्त्र आभूषण पहराय, अति शिष्टाचार करके विदा किया, और वे दल साज २ अपने देश को सिधारे। आगे राजा युधिष्ठिर पाण्डव और कौरवों को साथ ले, गङ्गा स्नान को बाजे गाजे से गये। तीर पर जाय के दण्डवत कर रज लगाय, आचमन कर, स्त्री सहित नीर में पैठे। उनके साथ सब ने स्नान किया। पुनि नहाय-धोय, सन्ध्या-पूजा से निश्चिन्त होय, वस्त्र आभूषण पहिन, सबको साथ लिये राजा युधिष्ठर वहाँ आते भये जहाँ कि मय दैत्य ने अति सुन्दर सुवर्ण के रत्नजटित मदिर बनाये थे। हे महाराज! वहाँ जाकर राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर विराजे। उस काल मे गन्धर्व गुण गाते थे, उस समय राजा युधिष्ठिर की सभा इंद्र की सभा सी हो रही थी। इसी बीच में राजा दुर्योधन के आने का समाचार आया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे महाराज! वहा मयने चौक के बीच में ऐसा काम किया कि, जो कोई न जानता था तिसे थल मे जलका भ्रम होता था और जल में थल का। हे

था कि जिसके घर पर मास तक खाने को कुछ न रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्रता से अति घबराय महा दुःख पाय, पति के निकट जाय भय खाय डरती काँपती बोली कि हे महाराज ! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं। जो आप इसे खोया चाहिये, तो मैं एक उपाय बताऊँ ब्राह्मण बोला कि उपाय क्या है तुम कहो ! तब स्त्री बोली की तुम्हारे परम मित्र, त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, हैं। जो उनके पास जाओ तो यह कष्ट जाय। क्योंकि वे अर्थ, धम, काम, मोक्ष के दाता हैं। हे महाराज ! जब ब्राह्मणी ने ऐसे समझाय कर कहा, तब सुदामा बोला कि प्रिये ! बिना दिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को कभी कुछ नहीं देते। मैं भलीभाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिना दिये कहाँ से पाऊँगा। हाँ, तेरे कहे से जाऊँगा, तो कृष्णजी के दर्शन कर आऊँगा। इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बाँध के प्रभु के भेंट के लिये ला दिये और डोरी लोटा, लाठी लाकर आगे धरी। तब तो सुदामा डोरी लोटा काँधे पर डाल, चावल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले, गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारिकापुरी को पधारे। हे महाराज ! बाट में चलते २ सुदामा मन ही मन कहने लगा कि भला धन तो मेरे प्रारब्ध में नहीं है। परन्तु द्वारिका जाने से श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का दर्शन तो पाऊँगा। इसी भाँति से सोच-विचार करता २ सुदामा तीन पहर के बीच में द्वारिकापुरी मे पहुँचा तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ-

ओर बन, उपबन सुन्दर फल फूल से सुहावने लग रहे हैं। तड़ाग बापी इन्दारा पर रहटपरोहे चल रहे हैं, ठौर ठौर पर गौओं के यूथ के यूथ चर रहे हैं। तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि हे महाराज! सुदामा बन उपबन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय के देखे तो कञ्चन के मणिमय मंदिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं। ठाव ठाव अथाइयों मे यदुबंश इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं। हाट बाट चौहाटों मे नाना प्रकार की वस्तु बिक रही है। घर घर जिधर तिधर गान दान हरिभजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निवासी महाआनन्द मे हैं। हे महाराज! यह चरित्र देखता और श्रीकृष्णचन्द्र का मंदिर पूछता। सुदामा सिंह पौर पर जा खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते २ पूछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी कहां विराजते हैं? उसने कहा कि देवता! आप मंदिर के भीतर जाओ सन्मुख श्रीकृष्णचन्द्र जी रत्न-सिंहासन पर बैठे हैं। हे महाराज! इतना वचन सुन कर सुदामा जी भीतर गये, तो इन्हें देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी सिंहासन से उतर आगे बढ़ के भेंट कर कर अति प्यार से हाथ पकड़ कर उन्हें ले आये। पुनि सिंहासन पर बैठाय, पांव धोय, चरणामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप करके प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

हे महाराज ! इतनी बात ब्राह्मणी के मुख से सुनकर सुदामाजी मन्दिर में गये और विभव देखके महा उदास भये। तब ब्राह्मणी बोली कि हे स्वामी ! धन पाकर लोग प्रसन्न होते हैं, किंतु तुम उदास हुए इसका कारण क्या है ? सो कृपा करके कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय। सुदामा बोले कि हे प्रिये ! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है और ठगती है, ठगेगी। सो प्रभु ने मुझे दी। और प्रेम की प्रतीत न की, मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी। इसीसे मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली कि हे स्वामी तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र जी से कुछ भी न माँगा था, परन्तु वे अन्तर्यामी घट २ की जानते हैं अतः मेरे मन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की, तुम अपने मनमें और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—हे महाराज ! इस प्रसंग को जो सुने व सुनावेगा, सो जन जगत में आकर दुःख कभी न पावेगा और अन्त काल में वैकुण्ठधाम को जावेगा।

(प्रेम सागर से)

सैयद इंशा अल्ला खां

रानी केतकी की कहानी

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके मां बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जीवन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भर के उसने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसे भीगती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थी। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उसने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उमंग अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सबको छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा जँभाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का हो के आसरा लगा ढूँढ़ने, इतने में अमराइयाँ ध्यान चढ़ीं, उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास लड़कियाँ झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियां हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा—तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़ सी पड़ गई।

सभा करता है। बात बनाई हुई और सचोटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो।' इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धर कर चाहता था कि सो रहे पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पडा पड़ा अपन जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथ वालियाँ सब सो रही। रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यो कहा। तू मेर साथ चल, पर तेरे पाओ पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनाने वाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इन अमरइयों में आई थी। रानी केतकी मदनबान का हाथ पकड़े हुए वहां आन पहुँची ही, जहां कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हे अकेला जान कर रानी जी आप आई हैं। कुँवर उदैभान यह सुन कर उठ बैठे। कुँवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे पर मदनबान दोनो को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का यह पता खुला कि राजा जगत परकास की बेटी हैं और उनकी मा रानी कामलता कहलाती हैं। 'उनको उनके माँ बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमरईयो में जाकर झूल आया करो। आज वही दिन था सो तुम से मुठभेड हो गयी। बहुत महाराजो के कुँवरों से बातें आईं। पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूँ मुझे अपने साथ लेके आई अब हैं। अब तुम अपनी बीती कहानी कहो तुम किस देश के कौन हो।' उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा

ाठ आँसू पडा रोता है।' यह सुनते ही कुँवर उदेभान के माँ
ाप दोनों दौड आए, गले लगाया, मुँह चूम पाँव पर बेटे के
ार पडे, हाथ जोड़े और कहा 'जो अपने जी की बात है सो कहते
्यों, नहीं क्या दुखडा है, जो पड़े पड़े कराहते हो। राजपाट जिसको
चाहो दे डालो, कहो तो तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा जी क्यो
नहीं लगता ? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता, मुँह से बोलो
जी खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो अभी लिख भेजो,
जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यों करने मे आयेगा। जो तुम
कहो कुँए मे गिर पडो तो हम दोनों अभी गिर पडते हैं, कहो
सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर
उदेभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना
बोले 'अच्छा सिधारिए मै लिख भेजता हूँ, पर मेरे उस लिखे
को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना, इसी लिए मैं मारे लाज के
मुख पाट होके पडा था और आप से कुछ न कहता था।' यह
सुन कर दोनो महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को
सिधारे। तब कुँवर ने यह लिख भेजा, 'अब जो मेरा जी होठों
पर आगया और किसी डोल न रहा गया और आपने मुझे सौ
सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड़
कर के हाथ जोड के मुँह को फाड के घिघिया के यह
लिखता हूँ।

उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था। एक हिरनी
मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई। उसके पीछे मैंने घोड़ा बग छुट
फेंका। जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया। जब
... सुहानी सी अमराइयाँ ताड़ के मैं उनमें

वह महाराजों का राजा हो जाये। किसी का मुह जो यह बात हमारे मुह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी विचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुंवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुह से निकलती। यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चगेर फेंक मारी और कहा 'जो बम्हन की हत्या का धडका न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अंधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाम्हन पर बीती तो सब उदैभान के मा बाप ने सुनी। सुनते ही लडने को अपना ठाट बांध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लडाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप समान रोने लगी, और दोनो के जी में यह आ गई, यह कैसी चाहत जिस में लोहू बरसने लगा, और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुप के से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लडने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो, हम तुम दोनो मिलके किसी और देश निकल चलें, होनी हो सो हो, सिर रहता रहे, जाता जाय।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे। उसने उस कुंवर की चिट्ठी किसी फूल की पखडी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाय और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी

बोटी करके चील कौवों को दे डाले, तो भी मेरी आँखें चैन और कलेजे सुख हो, पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। इसमें एक बाप दादे को चिट लग जाती है और जब तक मा बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल से बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेपक न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहें, कोई बात तो हमें रुचती नहीं।'

यह चिट्ठी जो कुवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल मोती के हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उसी चिट्ठी को अपने गुजरदे पर बाँध लेता है।

जगतपरकास अपने गुरु को, जो कैलाश पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है 'कुछ हमारी सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर बिपता आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक बावपैंडक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

कैलास पहाड़ जो एक डौल चाँदी का है, उस पर राजा जगतपरकास का गुरु, जिसको महेंदरगिर सब इंदरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नब्बे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे राँगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह में लेकर उड़ना परे रहे, उसको और बातें इस इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना

सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने मे महादेव जी छुट उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छः राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बदियों का सा धरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहा अतीनों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरों गिर, बिभास गिर, हिंडोल गिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपकसेन, जोतीस्वरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिने इस ढब से कहलाती थीं—गूजरी, टोडी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावली। जब चाहता अधर मे सिहासन पर बैठ कर उडासे फिरता था और नव्वे लाख अतीत गुटके अपने मुंह में लिये गेरुवे बसतर पहने जटा बिखारे उसके साथ होते थे। जिस घडी रानी केतकी के बाप की चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मार कर दल बादलो को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुंह से मल कुछ कुछ पढन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालो पर बैठे हुये गुटके मुंह में लिए हुए बोल उठे 'गोरख जागा और मुछन्दर भागा।' एक आंख की झपक मे वहा आ पहुचता है जहा दोनो महाराजों मे लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आधी आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़भाड़ थी कुछ न समझा कि क्या किधर गई और उन्हे कौन उठा ले गया। राजा जगतपरकास के लोगो पर और रानी केतकी के लोगो पर केवड़े के बूंदों की नन्हीं नन्हीं फुहारे सी पडने लगी। जब वह सब कुछ हो चुका तो

गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बनाके किसी बन मे छोड़ दो और जो उनके साथी हो उन सभो को तोड फोड दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा, झटपट वही किया। बिपत का मारा कुंवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मा लछमीबास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड़ भाड का तो कुछ थल बेडा न मिला, किधर गए और कहाँ थे। बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास की सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पाँव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुंचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिस को चाहिये दे डालिए। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चन्द्रभान चढ़ आवेगा तो क्या बचा होगा। अपने आप में तो सकत नहीं, फिर ऐसे राज का फिट मुँह, कहाँ तक आपको सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने [illegible] कहा 'तुम हमारे बेटा बेटी, आनन्द करो, [illegible]

ाये है जो कोई इसे अंजन करै वह सब को देखे और उसे कोई
देखे जो चाहे सो करें।

गुरु महेन्दर गिर के पाँव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे।
उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरकास उनको मुर्छल
करते हुए अपनी रानियों के पास ले गये। सोने रूपे के फूल गोद
भर भर सब ने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें
ठोंकी। रनी केतकी ने भी गुरु जी के दण्डवत की, पर जी मे
बहुत सी गुरुजी को गालियाँ दी। गुरुजी सात दिन सात रातें
यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने
बघम्बर पर बैठ उसी डौल से कैलास पर आ धमके और राजा
जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मा रानी कामलता को
भुलावे मे डाल कर यों कहा और पूछा—'गुरुजी गुसाईं महेन्दर
गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहां रखा है और
उससे क्या होता है'? रानी कामलता बोल उठी 'तेरीवारी! तू
क्यों पूछती है?' रानी केतकी कहने लगी 'आखें मिचौवल खेलने
के लिये चाहती हूँ, अब अपनी सहेलियो के साथ खेलूँ और चोर
बनूँ तो मुझको कोई पकड न सके।' महारानी ने कहा 'वह खेलने
के लिये नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल
रखते हैं। क्या जाने कोई घडी कैसी है कैसी नहीं।' रानी केतकी
अपनी मा की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और
दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे
रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी,
बेटी तुम्हारी आंख मिचौवल खेलने के लिये वह भभूत गुरुजी का

दिया मांगती थी। मैंने न दिया और कहा लडकी वह लड़क
की बातें अच्छी नही, किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए है
इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूँ मानती नही
महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उस
प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क
जो करोर जी हो तो दे डालें।' रानी केतकी को डिबिया से
थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपन
माँ बाप के सामने सहेलियो के साथ खेलती सबको हँसाती रही
जो सौ सौ थाल मोतियो के निछावर हुआ किए। क्या कहूँ
एक चुहल थी जो कहिये तो करोड़ों पोथियो मे ज्यों की त्यों
न आ सके।

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान मे मदनबान से यों बोल
उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे।'
मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का लेना
उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आँख मिचौवल के झाईं
झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा
कलेजा थरथराने लगा। अजी यह माना कि तुम अपनी आँखों में
उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें
तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सबको देखेंगी, पर ऐसी हम
कहाँ जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिए बन बन में पड़ी भटका
करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाले हुए लटका करें
और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहाँ और होय तो क्या
जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगोड़ी नोची खसोटी
उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय यह जिसके

है जो मै माँ बाँप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौडती करछाले मारती फिरूँ, पर अरी तू तो बडी बावली चिडिया है जो यह बात सच जानी और मुझ से लड़ने लगी।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिना कहे मदनबान के वह भभूत आँखो मे लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने मे आता नही जो माँ बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरुजी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग मे छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगो मे से राज थामने को छोड़ गए। बहुत दिनो पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनबान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछो तो।' महाराज ने उसे बुलाकर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता अब जो वह तुझे ले जाये तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो। जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहीं इस राख को चूल्हे मे डालेंगे। गुरु जी ने [illegible] मारा। [illegible] और [illegible] जगतपरकास और कामलता का भी [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible]

बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान, उदैभान' चिंघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एक को ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखें धो डालो।' एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ो मे कूक सी पड गई।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनवान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ वाप ने जो उनक लिए जोग साधा या जो वियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी।

पर मदनवान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्हें यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नाते को ठहराऊँ। गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनो उजड़े हुए की मुट्ठी मे है। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सकते हैं। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी वकती हैं। मै इस पर बीड़ा उठाती हूँ।' बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनबान को अपने माँ बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने हाथो से लिख भेजी, जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

मदनवान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगत-परकास और रानी कामलता जिस पहाड पर बैठी थीं, झटसे आदेश

करके आ खड़ी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिये'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की बात में गोसाईं महेन्द्रगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी जोगिन का आया आँखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसी लिए मैं सौंप गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे। पर तुम क्या करो? वह खिलाड़ी जो रूप चाहे सो दिखावे, जो नाच चाहे नचावे। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरन हिरनी उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीबास उसकी मा को मैं ने किया था। फिर उन तीनों को वैसा का वैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो। अपने राज पर बिराजो और ब्याह की ठाट करो। अब तुम अपनी बेटी को [illegible]। कुँवर उदैभान को मैं ने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर आ बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

जानूंगा यह मेरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे, रात दिन चला जावे'। इस हेरफेर मे वह राजा था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्दर गिर मदनबान के साथ जहा रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहा आन पहुँचे। गुरु जी ने रानी केतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो अब बेटे उदैभान को लिये हुए आता हूँ।' गुरु जी गोसाईं जिनको दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने मे आवेगी। यहा पर धूमधाम फैलावा अब ध्यान कीजिये। महाराज जगत-परकास ने अपने सारे देश मे कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवेगी। गाँव गाँव मे अपने सामने छिपोले बना बना के सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुप की और गोखरू, रूपहले सुनहरे की किरनें और डाक टाक टाक रक्खो और जितने बड़, पीपल नये पुराने जहा जहा पर हों उनके फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिसमे सिर से लगा पैर तलक पहुंचे बाँधो।

चौतुका

पौदों ने रगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव मे डालियो ने तोड़े पहने॥
बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पाते थे, सबने अपने

गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को अपने गले लगाया और बड़ी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को दे कर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुँड़वाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वहीं ईश्वरोवाचा पढ़ के दिये तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुये और जो जो अधमुये भाग बचे थे, सब सिमट आये। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को ले कर एक उड़न-खटोले पर बैठ कर बड़ी धूम-धाम से उन को उन के राज पर बिठा कर ब्याह के ठाठ करने लगे। पसेरियन हीरे-मोती उन सब पर से निछावर हुये। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीसें पा कर फूली न समाईं और अपने सारे राज को कह दिया 'जेवर भौंरे के मुँह खोल दो, जिस जिस को जो-जो उकत सूझे बोल दो। आज के दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आँखों की पुतलियों का जिस से चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप से निकल फिर राज पर बैठना। पहिले तो यह चाहिये, जिन जिनकी बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हों उन सब को उतना कर दो जो अपनी जिस चाव चोज से चाहें अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमारे यहाँ से खाया पकाया लिया करें। और सब राज भर की बेटियाँ सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे रातें छूटें कभी कोई कुछ न कहा करे। और सोने रूपे के किवाड़ गंगा जमुनी सब घरों में लगा दें और सब कोठों के माथे पर केसर और चन्दन के टीके लगे हों और जितने 'पहाड़' हमारे देस में हों आन [illegible]

पहाड सोने रूपे के सामने खड़े हो जायँ और डाँगो की चोटिया मोतियों की माग से विना मांगे तांगे भर जायँ और फूलों के गहने और वन्धनवार से सब झाड़ फहाड़ लदे फँदे रहे और इस राज से लगा उस राज तक अधर मे छत सी वाध दो और चप्पा-चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहा भीड़-भडक्का धूम-धड़क्का न हो जाय। फूल बहुत सारे खंड जाय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहतिया हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को ब्याहने चढ़ें सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड़ मे इधर और उधर कँवल की टट्टिया वन जायँ और क्या-रियाँ सी हो जायँ जिन के वीचोबीच से हो निकले और कोई डाँग और पहाड़ तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिस की गोद पँखुरियो से भरी हुई न हो।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह लड़किया चुलबुलियां जो अपने मद मे उड़ चलिया हैं उन से कह दो—सोलह सिगार वाल गजमोती पिरो अपने-अपने अचरज और अचम्भे के उड़न-खटोलों की इस राज से ले कर उस राज तक अधर मे छत सी वाध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न-खटोलियों की क्यारियां और फुलवारियाँ सैकड़ो कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर भिरदंग वीन जलतरंग मुहचँग घुँघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढव के अनोखे वाजे। वजते आयें और उन क्यारियो के वीच मे हीरे पुखराज अनवेध मोतियो के झाड और लालपटों की भीड़भाड की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों मे से हथफूल फुलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब टने लगें जो देखने वालो की छातियों के केवाड़

खुल जायें और पटाखे जो उछल-उछल फूटें उन मे से हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े और जब हम सब को हँसी आवे तो चाहिये उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उन को चुन चुन के राजे हो जायँ । डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गाओ, दोनों हाथ हिला के अँगुलियाँ नचाओ, जो किसी ने सुनी हो। वह ताव भाव व चाव देखाओ, ठुड्डियाँ गिनगिनाओ, नाक भँवें तान-तान भाव बताओ, कोई छुटकर रह न जाओ। ऐसा चाव लाखों बरस मे होता है।' जो-जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक-ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमावट के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बम्हन जो अँधेरी कोठरी में मूँदा हुआ था उस को भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़ और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जाना, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है [illegible] पर वही रीत बता के साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी [illegible] [illegible] साथ थे। [illegible] [illegible] हुआ [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] गया। [illegible]

सब माले मोतियों की लड़ियों के गले मे डाले हुये और गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघम्बरों पर आ ठहर गये। लोगों के जियों मे जितनी उमंग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चंडोल और रथो पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीबास के पीछे चली आतियाँ, थीं सब की गुदगुदियाँ सी होने लगी। इसी मे भरथरी का स्वाँग आया। कही जोगी जतियाँ आ खड़े हुये। कही-कही गोरख जागे कहीं मुच्छन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ वराह सन्मुख हुए। परसुराम, कहीं वामन रूप, कही हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आए, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जन्मअस्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उन का बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियो से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कही करील की कुँजें, बंसीवट, चीरघाट, वृन्दावन, सेवाकुञ्ज, बरसाने मे रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यो आँखों में आना और द्वारिका जाना और वहा सोने का घर बनाना इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया।

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियो मे थे, पक्के चांदी के थक्के से होकर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे। निवाड़े, भौलिये, बजरे लचके, मोरपङ्खी, स्याम सुन्दर, रामसुन्दर और जितनी ढब की नावें थीं सुनहरी रूपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचकें खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ

महाराजों मे रीतें होती चली आई थीं, उसी डौल से उसी रूप से भँवरीं गठ जोडा हो लिया।

यह उडनखटोले वालिया जो अधर मे छत सी बाधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियों से निछावर करने के लिये उतर आइयाँ और उडनखटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बाधे हुए खडे रहे और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने मे पिस गइया। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई मे एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेडी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिस मे जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बाँध दी और इक्कीस लौंडियाँ उन्हीं उडनखटोले वालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गातिया सीतिया पिरोतिया और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानी केतकी छुट उन के दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना, नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरत हो जाओगी और अपना किया पाओगी।' और गोसाईं महेन्दर गिर ने [illegible] रखी था उस को इक्कीस बूटी आगे रखी और कहा "यह भी एक खेल है जब चाहिये बहुत सा तांबा गला के एक इतनी सी बूटी डाल दीजे कंचन हो जायगा" और जोगी जी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उन के ब्याह में जागे हैं उन के घरों में [illegible] दिन [illegible] सोने [illegible] के [illegible] से भरा [illegible]। अब तक [illegible] किसी बात का फिर न तरसेंगे' जो जाग [illegible]

घुंघरू छमछमातियाँ महन्तों को दान हुई। और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया। बाइस सै हाथी और छत्तीस सै उंट रुपये के तोडे लादे हुये लुटा दिया। कोई उस भीडभाड मे दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिस को घोडा जोडा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोडे न मिले हों। और मदन-बान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसी का हियाव न था जो बिन बुलाये चली जाय, बिन बुलाये दौड़ी आये तो वही आये और हँसाय तो वही हँसाये। रानी केतकी के छेडने के लिये उन के कुँवर उदैभान को कुँवर क्योडा जी कह के पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ-सौ रूप से सँवारती थी।

सदल मिश्र

नासिकेत और यम

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन ऋषि से कहा "ऐ महाराज! सुना है जो स्थान पर आके कुछ दिन के बीते पर पिता के शाप से जीवन ही नासिकेत यम के पास गए और आए सो सच कृपा कर हमको सुनाइए जिस से सन्देह मेरा दूर होए।"

वे बोले, हे राजा। अति आश्चर्य कथा है. तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हो मैं कहता हूँ. एक चित्त हो सुनो—

इस प्रकार राजा रघु की बेटी चन्द्रावती को ब्याह साथ ले फिर उद्दालक तपस्या करने लगे। और नासिकेत को योग की श्रद्धा हुई सो वे लगे योग करने।

एक दिन पिता ने उनको आज्ञा दी कि पुत्र! आज हमको अग्निहोत्र यज्ञ करना है, तुम कन्द मूल फल जितना मिले सो शीघ्र जा ले आओ।

सुनते ही वे उठ खड़े भये और किसी बन में जा पहुँचे। वहाँ इन सारों से सुशोभित ऐसा कोई सुन्दर सरोवर देखा कि जहाँ स्वच्छ निर्मल पानी, जिस में भाँति भाँति के कमल फूले थे, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कुश वो ईंधन ले पिता के पास पहुँचे । देखते ही वे क्रोध से लाल आँख कर बोले—

चौपाई

इतना दिन कहो कहां लगाए । तेरे कारण बहु दुख पाए ॥
अग्निहोत्र वह यज्ञ हमारा । तुम विना गया अकारथ सारा ॥

पुत्र करते हैं सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा । अब ही से पिता माता को दु.ख देने लगा, न जाने आगे क्या करेगा । देखो अग्निहोत्र से ब्रह्मा आदि देवता और पितर सब सन्तुष्ट होते हैं, सो हम से कुछ हो सका नहीं ।

पिता की बात सुनि नासिकेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म्म केवल संसार के बन्धन के लिए है, मेरे जानने में तो योग समान दूसरी क्रिया मुक्तिदायक नही कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब भी साधते रहते हैं ।

उद्दालक बोले वेद पढि अग्निहोत्र करके करोडन्ह बरस सुरपुर में नाना भोगविलास करते हैं । योग से कहो क्या होता है ?

नासिकेत ने कहा वेद पढ़ि अग्निहोत्र करने से बार बार संसार में आते जाते हैं । योग साधने से इस देह से मुक्त हो आनन्द विहार करते है ।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं कि, इस प्रकार पुत्र को बराबर उत्तरदायक जान उद्दालक ऋषि ने शाप दिया कि जाव, अब ही तुम यमलोक सिधारो । अब इहां तुम्हारे रहने से हम प्रसन्न नहीं । पहिले तो वे डरवाने शाप से लगे कांपने, फिर धीरज कर योग के बल से तुरन्त यम के निकट चल खड़े भये ।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट देखत सुखदायक॥
जटा मुकुट वो भस्म लगाए। जातेहि सकल सभा [मन] भाए॥

तब सिर नवाय प्रणाम कहि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति करने।

वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नासिकेत मुनि को, जिनके जाने से सभा शोभने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए। आदर मानकर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाया वो प्यार से समाचार पूछने लगे।

चौपाई

बालहिपन में बड़ी सिधाई। कहो मुनीश कैसे यह पाई॥
धन्य पिता जिनके तुम भए। तुम्हें देख पातक सब गए॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई। जो कहत सोहावनि अति सुखदाई॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा 'दीनदयाल! अपनी भूल कहाँ तक मैं आपको सुनाऊँ। जब कुमति आ घेरती है तब कैसहू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने मे नहीं रहता। एक तो पहिले आज्ञा में चूके ही थे, फिर ज्ञान की चर्चा मे ढिठाई कर पिता को बराबर उत्तर दिया। इस अपराध से भट उनके मुख से यह बात निकल गई कि जा, अब ही यमपुरी को देख, तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं। सो महाराज पिता का वचन सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आज्ञा [illegible] सो मैं करूँ।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट देखत सुखदायक॥
जटा मुकुट वो भस्म लगाए। जातेहि सकल सभा [मन] भाए॥

तब सिर नवाय प्रणाम कहि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति करने।

वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नासिकेत मुनि को, जिनके जाने से सभा शोभने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए। आदर मानकर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाया वो प्यार से समाचार पूछने लगे।

चौपाई

बालहिपन में बड़ी सिधाई। कहो मुनीश कैसे यह पाई॥
धन्य पिता जिनके तुम भए। तुम्हे देख पातक सब गए॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई। जो कहत सोहावनि अति सुखदाई॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा 'दीनदयाल! अपनी भूल कहाँ तक मैं आपको सुनाऊँ। जब कुमति आ घेरती है तब कैसहू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने मे नहीं रहता। एक तो पहिले आज्ञा में चूके ही थे, फिर ज्ञान की चर्चा में ढिठाई कर पिता को बराबर उत्तर दिया। इस अपराध से झट उनके मुख से यह बात निकल गई कि जा, अब ही यमपुरी को देख, तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं। सो महाराज पिता का वचन सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आज्ञा होय सो मैं करूँ।

सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर मे हैं सो देखने की ी इच्छा है । कृपानिधान ! दया करके हमारे मनोरथ ा पुरावो ।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार के विनती किए पर चित्रगुप्त ी आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ ुण्य पाप के फल पावते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया । महातेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर वो नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए ? श्रद्धा पूरी भई ?

वे बोले 'महाराज ! तुम्हारे प्रसाद से सब स्थान से मैं हो आया । अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से बिदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दु:ख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार मे मगन रहो । और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कबही न मुँह देखेगा ।

इस प्रकार से यह वर पाय नासिकेत मुनि मन के वेग समान से चले, सो पल भर में जहा माता पिता मारे मोह से दुबरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहाँ अचानक जा पहुँचे, व

से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर मे हैं सो देखने की मेरी इच्छा है । कृपानिधान ! दया करके हमारे मनोरथ को पुरावो ।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार के विनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पावते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खडा कर दिया ।

महातेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि ! चित्रगुप्त समेत सारे पुर वो नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए ? श्रद्धा पूरी भई ?

वे बोले 'महाराज ! तुम्हारे प्रसाद से सब स्थान से मैं हो आया । अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से बिदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार मे मगन रहो । और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कबही न मुँह देखेगा ।

इस प्रकार से यह वर पाय नासिकेत मुनि मन के वेग स समान से चले, सो पल भर में जहा माता पिता मारे मोह व दुबरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहाँ अचानक आ पहुँचे,

समाचार पूछने के लिए चल खड़े भये । कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पाँव किये और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई एक ही हाथ उठाय, किसी को देखो तो मौन ही व्रत किये, कोई सूखे पत्ते ही खा, कोई निहारी हुये, बहुतेरे ससार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेप बनाये, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाये, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे ।

देखते ही वे हर्षित हो उठ खड़े भये वो प्रणाम कर मिल भेट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक-एक को अलग-अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे ।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिकेत ! हम तुम से अति प्रसन्न भये । शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा , अब यमलोक की बात सुनाओ । कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्म्मराज विराजते रहते है ? कैसे यम के दूत हैं ? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ बैतरणी नदी है ? और यहाँ जो करते सो वहाँ कैसे भोगते है ? किस करम के फेर से यम के कोप मे जा पड़ते हैं ? कैसा उनका दण्ड व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियो के धर्म्म अधर्म्म लिख धर्म्मराज को जानते हैं ? पास मे उन के कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? सो सब कृपा कर कहो कि जिस से अति सन्तुष्ट हो तुम्हारे गुण को गावें ।

उन की इतनी बात सुन व च मे बैठ नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिस के श्रवण से रोमाँच होते हैं ।

(नासिकेतोपाख्यान से)

दुःख व शोक नहीं प्राप्त होता सो तुम पांचों भाइयों में अर्जुन व भीमसेन बड़े शूर वीर हैं व द्रौपदी ऐसी पतिव्रता स्त्री तुम्हारे साथ थी फिर उन्होंने किस वास्ते इतना दुःख पाया सिवाय इसके जहां श्रीकृष्ण जी के नाम की चर्चा रहती है वहां दुःख नहीं होता सो श्रीकृष्ण जी परब्रह्म का अवतार आप रातदिन तुम्हारी सहायता करते थे फिर तुमने किस वास्ते इतना कष्ट सहा सो हे राजन्! तुम इस बात को विश्वास कर के जानो कि परमेश्वर की इच्छानुसार जिसको जैसा होनहार है उससे पृथक् दूसरी बात नहीं होने सकती। दुःख व सुख पिछले जन्मों के संस्कारों से भोगना पड़ता है और परमेश्वर की महिमा और भेद को कोई नहीं जानता। कोई मनुष्य किसी काम के वास्ते परिश्रम करके अपने मनोरथ को पहुँच जाता है और बहुत मनुष्य जन्म भर उद्योग और परिश्रम करने से भी अपने अर्थ को नहीं पाते, इसलिये सब का उत्तम व मध्यम परमेश्वर की इच्छा पर समझना चाहिये। जो वह चाहते हैं सो होता है इसलिये बुद्धिमान और ज्ञानी उसीको समझना चाहिये जो हर्ष व शोक का बारबार जानकर परमेश्वर की इच्छा पर आनन्द रहता है और जो कोई नारायण जी की आज्ञा पर सतोष न रख कर थोड़े से दुःख पहुँचने मे रो देता है और जब उसको रोने से कुछ नहीं होता तब हार मान कर कहता है कि नारायण जी की इच्छा यों ही थी उसे महामूर्ख जानना चाहिये। हे राजन्! मनुष्य के चिन्ता और परिश्रम करने से कुछ नहीं हो कर सब काम हरीच्छा से होते हैं। जिसको होन-हार कहते हैं और यह श्रीकृष्ण जी साक्षात् त्रिलोकीनाथ अपना स्वरूप छिपाकर जगत् में लीला करते हैं इनके भेद को कोई

समय भीष्मपितामह यह सब ज्ञान व धर्म राजा युधिष्ठिर को समझाते थे उस समय द्रौपदी वहाँ बैठी हुई भीष्मपितामह की ओर देख रही थी। जब उन्होने सब धर्म कहते समय यह बात भी कही कि जिस सभा मे धर्म का जानने वाला मनुष्य बैठा हो व उस जगह दूसरा कोई अधर्म की राह कुछ पाप करने की इच्छा करे तो धर्मात्मा मनुष्य को उचित है कि दूसरे को पाप करने से वर्जि देवै। कदाचित् वह मना करने की सामर्थ्य न रखता हो तो वहाँ से उठ जावे और परमेश्वर का ध्यान करे। यह भीष्मपितामह का वचन सुनते ही द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर व अर्जुन की ओर देख पहिले मुसकरा दिया व फिर मन मे लज्जित होकर विचार किया, देखो राजा दुर्योधन की सभा मे भीष्मपितामह के सामने अधर्म की राह मेरी यह दुर्दशा हुई और दुश्शासन ने मुझ को विवस्त्र करने वास्ते मेरा चीर खींचा, राजा दुर्योधन ने मेरी अप्रतिष्ठा की। ऐसी दुर्दशा होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला व मैं अपना मुख लोगो को दिखलाती हूँ, ऐसे जीने से मर जाती तो उत्तम था। जब यह समझ कर द्रौपदी बहुत उदास हो मन मे अपने को धिक्कार देने लगी तब भीष्मपितामह ने द्रौपदी का मुख मलीन देखते ही उसके हृदय की बात अपने ज्ञान से जान कर कहा 'हे बेटी! तुम अपने मन मे कुछ शोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, किस कारण कि जिस समय यह सब अधर्म तेरे ऊपर हुआ था उस समय मै भी वहाँ बैठा था। जो मैं दुर्योधन को इस अनीति से मना करना चाहता तो उसकी सामर्थ्य नहीं थी जो ऐसा अधर्म तेरे ऊपर करता पर उस समय मेरे मन मे यह ज्ञान नहीं आया। इससे बेटी तुम निश्चय जानो कि

र सब अन्न व धन उसका लूट के अपने स्थान में भेजवा दिया।
ी एक दिन राजमन्दिर में उसी अन्न की रसोई तैयार हुई और
उसमें परमहंस ने भी भोजन किया इसलिये अधर्मी सोनार का अन्न
खाने से परमहस ने ऐसा विचार किया कि कुछ वस्तु राजा की
चोरी करें। यह वात विचार कर परमहंस ने रानी का एक जड़ाऊ
हार बहुत उत्तम महल के भीतर से, कि उनकी वहाँ जाने वास्ते
मनहाई नहीं थी चुरा लिया और कपड़े में लपेट कर अपने पास
रख लिया व तीन दिन तक परमहस राजमन्दिर पर नहीं गया।
जब उपवास करने से सोनार का अन्न पेट में नहीं रहा तब परम-
हस को ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ कि हमने हार चुराया है। इस पाप
के बदले नरक भोगना पड़ेगा इस वास्ते अपने अधर्म का दंड इसी
तन में भोग कर लेना उचित है, जिसमें परलोक का डर न रहे।
परमहस यह बात विचार कर वह हार राजा के पास ले गया व
अपनी चोरी करने का हाल कह कर बोला, 'हे पृथ्वीनाथ! इस पाप
के बदले मेरे दोनों हाथ कटवा डालिये कि हम अपने अधर्म का दंड
इसी जन्म मे भोग कर लेवें'। यह वचन सुनते ही राजा ने उदास
होकर पंडितों से पूछा इसका क्या कारण है जो परमहंस का
चित्त उसी दिन से बदल गया कि इन्होंने हार चुराया और आज
उस हार को मेरे पर लाकर ऐसी बात कहते हैं। ब्राह्मणों ने अपनी
विद्या से विचार कर कहा कि महाराज! जिस रोज परमहस ने
चोरी किया उस दिन किसी अधर्मी का अन्न खाया होगा सो पूछने
से राजा को मालूम हुआ कि उसी सोनार पापी का अन्न खाने से
परमहस की बुद्धि बदल गई थी, सो हे द्रौपदी! एक दिन अधर्मी
के अन्न खाने से परमहस महात्मा का ऐसा ज्ञान जाता रहा कि

जाता सो आपने अर्जुन की रक्षा करके उन तीरों से बचाया और उन बाणों का घाव अपने अंग पर उठाया, सो मेरे बाणों के घाव से तुम्हारी सांवली सूरति पर रक्त के छींटे मूंगे के समान ऐसे शोभायमान दिखलाई देते थे जिसकी शोभा वर्णन नहीं हो सक्ती। व आप अर्जुन को इस वास्ते धैर्य देते जाते थे जिसमे उसका पराक्रम कम न हो और आपके चन्द्रमुख पर टेढ़े टेढ़े घूंघर वाले बाल कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे काले काले भंवरे कमल के फूल का रस चूसते हैं, व तुम्हारे मुखारविन्द पर धूर उडकर पडने और पसीना होने से कैसा मालूम देता था जैसे फूल पर ओस की बूंद रहती है, और वह पसीना तुम अपने पीताम्बर से पोंछकर दाहिने हाथ कोड़ा, बायें हाथ में रास घोडों की लिये हुये रथ को जल्दी से मेरी तरफ दौडाते थे, सो मैं चाहता हूं वही स्वरूप आपका मेरी आँखों मे बसा रहे व तुम्हारे कमलरूपी चरण मेरे हृदय से बाहर न जावै। आप अपने भक्तो का ऐसा मान रखते हैं कि महाभारत होने के पहिले तुमने प्रण किया था कि हम शस्त्र नहीं चलाकर केवल रथवानी करके शंख बजावेगे और हमने प्रतिज्ञा की थी जो मैं भीष्मपितामह कि आपको लडाई मे विकल करके तुम्हारा प्रण छुड़ाकर तुम से अस्त्र धराऊं। सो आपने भक्तपन की राह से विचारा कि मेरा प्रण छूट जावे तो सन्देह नहीं पर मेरे भक्त की प्रतिज्ञा न छूटै। यह समझ कर जब मैने अर्जुन के रथ का पहिया तोड कर घोड़ों को मार डाला और उसके रथकी ध्वजा व धनुप काटके गिरा दिया, तब आप क्रोध करके उसी रथ का टूटा हुआ पहिया उठाकर मेरे मारने के वास्ते दौड़े। उस समय तुम कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे श्याम घटा बिजुली के साथ, बड़े धूमधाम से चढ़े। दौडते

उस समय पीडा से मनुष्य अचेत होकर उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता। उस समय तुम्हारी कृपा होने से जिसका ज्ञान बना रहता है वह आदमी तुम्हारे चरणों का ध्यान हृदय में रखकर भवसागर पार उतर जाता है, इस लिये मैं तुमसे यही चाहता हूँ कि यह स्वरूप आपका मेरी आँखों के भीतर बसकर तुम्हारे चरणों में मेरा मन लगा रहे। यह स्तुति करने उपरान्त भीष्मपितामह ने ध्यान ज्योतिस्वरूप का हृदय मे रख कर श्यामसुन्दर और सब ऋषीश्वर और मुनीश्वरों को दण्डवत् करके अपनी आँख बन्द कर लिया और योगाभ्यास के साथ अपना तन छोडकर वैकुण्ठ-वास पाया। उस समय देवतो ने आकाश से उन पर फूलों की वर्षा किया।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि भीष्म-पितामह के मरने का शोक श्रीकृष्ण व पाण्डवो ने बहुत सा किया। फिर मुरली मनोहर ने राजा युधिष्ठिर को समझाया कि जिस तरह की मृत्यु संसार मे भीष्मपितामह ने पाई इस तरह की मृत्यु दूसरे को पाना बहुत दुर्लभ है। संसार मे जिसने तन धारण किया वह एक दिन अवश्य मरेगा, इस वास्ते इनके मरने का शोक छोडकर हर्ष मनाना चाहिये। जो कोई मनुष्य का तन पाकर संसारी माया मोह मे फँसा रहे व परमेश्वर से विमुख रहकर जन्म अपना वृथा गँवावे उसके वास्ते रोना उचित है सो भीष्मपितामह ससार मे भक्तिपूर्वक व धर्मसंयुक्त रहकर शरीर त्यागने उपरान्त वैकुण्ठ को गये इसलिये इनके मरने का शोक करना न चाहिये। यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने मन को धैर्य दिया व श्यामसुन्दर की आज्ञा से भीष्पपितामह की क्रिया और कर्म किया।

(सुखसागर मे से)

म दिया कि फौज जावे और रामकान्त का घर-वार लूट लेवे र देवीप्रसाद उस की जगह राजा होवे। उस समय की मलदारी मे प्राय: ऐसा ही अन्धेर मचा करता था। रामकान्त हलों में था। सुना कि नवाब की फौज घर मे घुस आई और ट कर रही है। इज्जत के खौफ से रानी भवानी को साथ ले नाले की राह बाहर निकला। धन द्रव्य का ज़रा भी मोह न किया। रानी भवानी एक तो रानी, दूसरे गर्भवती। पावों काहे को कभी चली थी। ज्यों त्यो बैठती उठती रामकान्त के साथ गङ्गा के किनारे तक पहुँची। वहाँ से एक छोटी सी नाव पर बैठ कर दोनों मुर्शिदाबाद आये और जगतसेठ की शरण ले कर एक छोटी सी हवेली मे रहने लगे। विपत की तकलीफ सहते-सहते घबडा गये थे। एक दिन रामकान्त खिड़की मे से दयाराम को पालकी पर जाते हुए देख कर बोला कि, दया भाई। अब इस विपत्ति मे कब तक रखोगे ? दयाराम रामकान्त को देखते ही पालकी से उतर कर उसके पास चला आया और अपने मालिक की ऐसी दुर्दशा देख के आँखों मे आँसू भर लाया। बोला कि पचास हज़ार रुपया होय तो तुम को तीन ही दिन मे फिर राज दिलवा सकता हूँ। राजा ने कहा, मेरे पास इस समय रुपया कहाँ, रानी ने समझाया कि आप न घबड़ाइये और अपना सारा जेवर उतार दिया। दयाराम ने उसे बेंच कर जहा देवीप्रसाद रहता था, वहाँ से नवाब की ड्योढ़ी तक जितने बनिये और दूकानदार थे और जो जो नौकर-चाकर नवाब के आसपास और दरवाज़े पर हाजिर रहा करते थे सब को पाँच से ले सो तक रुपये बाँटे और कहा कि आप लोग जिस समय देवीप्रसाद

जारी था। काशी मे आठ मन भीगा चना और पचीस मन चावल नित भूखों को बटा जाता था और एक सौ आठ स्त्री-पुरुष इच्छा-भोजन करते थे। जब रानी भवानी काशी मे आई, तो कहते हैं सत्रह सौ नाव उसके साथ थीं उस का रहना अक्सर जिले मुर्शिदाबाद मे गङ्गा के तीर बडनगर मे होता था और यह बात सोच कर कि सब जगह मे सब समय मे भूखे नंगे उस तक नहीं पहुँच सकते और न वह उनको दान दे सकती थी—हुक्म था कि जब कोई भूखे-नंगे आवे तो दो रुपये तक पोद्दार, पाँच रुपये तक खज़ानची, दस रुपये तक मुत्सद्दी और सौ रुपये तक दीवान बिना पूछे दे दे। जब सौ रुपये से अधिक देना हो तो रानी से पूछे। ज़मींदारी भर मे ब्राह्मण की कन्या का विवाह-खर्च रानी की सरकार से दिया जाता था। नवरात्र मे दो हज़ार वस्त्र सधवा और कुमारियो का बँटता और उसके साथ एक-एक सोने की नथ भी दी जाती और पचास हजार रुपया पण्डितो को मिलता। रोगियो के देखने को आठ वैद्य नौकर थे—वे जमींदारी भर मे गाँव-गाँव दवा लेकर घूमा करते। बीमारो की सेवा को उनके साथ नौकर भी रहा करते। रानी भवानी के दान-धर्म मे कैसी निष्ठा थी इसी बात से मालूम हो जायगी। जब तक एक साल इलाकों की आमदनी आने मे देर हुई तो आपने हुक्म दिया कि खत्तों मे जो कुछ गल्ला है बेच डालो और जिस-जिस को जो-जो मैंने देने को कहा है तुरन्त दे दो। कहते हैं कि वह गल्ला तीन लाख रुपये को बिका और खज़ाने मे आने से पहले लोगो को बँट गया। तो भी पूरा न पडा, तब अपने गहने बेच कर दिया। पर जिसे देने को कहा था वह बचन न तोड़ा। वह नित चार घडी रात रहे उठती

स्वामी दयानन्द

आचार-व्यवहार-परीक्षा

(प्रश्न) आर्य्यावर्त्त देशवासियो का आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न २ देशों मे जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

(उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कही करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त मे रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा, जो ऐसा ही होता तो –

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं तत ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ।
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ।। [अ०३२७]

ये श्लोक महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म मे व्यास-शुक-संवाद मे है—अर्थात एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात जिसको इस समय 'अमेरिका' कहते है उसमे निवास करते थे । शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्म-विद्या इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योकि उस बात का उपदेश कर चुके थे । दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र ! तू मिथिलापुरी मे जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर, वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा । पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल

नुष्य देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं
करते वे देशदेशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीति-
भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय, शूरवीर
होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने मे
तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो स्वदेश मे महा-
भ्रष्ट, म्लेच्छकुलोत्पन्न दुर्जनो के समागम से आचारभ्रष्ट, धर्महीन
नहीं होते, किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषो के साथ समागम मे
छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो
क्या है? हाँ, इतना कारण तो है कि जो लोग माँसभक्षण और
मद्यपान करते हैं उनके शरीर और धातु भी दुर्गन्धादि से
दूषित होते हैं, इस लिये उनके सङ्ग करने से आर्य्यों को भी यह
कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार
और गुण ग्रहण करने मे कोई भी दोष वा पाप नहीं है, किन्तु
इनके मद्यपानादि दोषों को छोड गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी
हानि नहीं। जब इनके स्पर्श और देखने से भी मूर्खजन पाप
गिनते हैं इसी से युद्ध कभी नहीं कर सकते, क्योंकि युद्ध मे उनको
देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगों को राग, द्वेष,
अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर, प्रीति, परोपकार,
सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी
समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्तव्य के साथ है। जब हम
अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर
जाने मे कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम
करने मे लगते हैं। हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का

प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि अनाचारी व्यक्तियों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

(प्रश्न) सखरी निखरी क्या है ?

(उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकते हैं निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिस मे घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर मे चिकना पदार्थ अधिक जावे इसलिये यह प्रपंच रचा है, नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है। जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं, क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

(प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें या शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

(उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापार के काम मे तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः।

[आपस्तम्ब धर्मसूत्र। प्रपाठक १। पटल २। खण्ड ३। सूत्र ४।]

यह आपस्तम्ब का सूत्र है। आर्यों के घर मे शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें, परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवि[त्र] रहें, आर्यों के घर मे जब रसोई बनावें तब मुख बाँध के बना[वें] क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अ[न्न में न पड़े]

अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं तो भंगी व मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान मे बना कर तुमको आके देवे तो खा लोगे या नहीं ? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य माँसाहारियो के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपस मे आर्यों का एक भोजन होने मे कोई भी दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्य्यावर्त मे राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढना पढाना वा बाल्यावस्था मे अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाच सहस्र वर्ष के पहले हुई थी, उनको भी भूल गये। देखो महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई मे सवारियों पर खाते पीते थे, आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो होगया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा। वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र-हत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों मे से नष्ट हो जाय।

से पाच बछड़ियों के जन्मभर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पाँच बैल, वे जन्मभर में ५०००) (पाच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावें तो अढाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढी-परपीढ़ी बढाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यो का पालन होता है। इससे भिन्न [बैल] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध मे अधिक उपकारक होती है। और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी हैं, परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतमे भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालो को सब मनुष्यो की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो! आर्य्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोलदेशो में बडे आनन्द मे मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे, क्योंकि दूध, घी बैल आदि पशुओ की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मासाहारी इस

पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित हैं उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ?

(उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठि आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का रुधिर भी बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं। इसी लिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥ [मनु० [illegible]]

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना इधर उधर जाय।

(प्रश्न) "गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ?

(उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है [illegible] भोजन [illegible] अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके [illegible] [illegible] को [illegible] चाहिये।

(प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो [illegible] उच्छिष्ट सहत, बछड़े का उच्छिष्ट दूध [illegible] [illegible] [illegible] पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है, [illegible] [illegible] चाहिये।

(उत्तर) सहत कथनमात्र [illegible]

बहुत सी ओषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी मां के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं, परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये। और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता। देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे। जैसे अपने नाक, कान, आँख, उपस्थ और गुह्येन्द्रियों के मल मूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा न खाय।

(प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न भिन्न है।

(प्रश्न) कहो जी मनुष्यमात्र के हाथ की की हुई रसोई के खाने में क्या दोष है? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्यन्त के शरीर हाड़ मांस चमड़े के हैं, जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चाण्डाल आदि के, पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है?

(उत्तर) दोष है, क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोषरहित रज वीर्य उत्पन्न होता है, वैसा चाण्डाल और चाण्डाली के शरीर में नहीं, क्योंकि चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसलिये ब्राह्मणादि

उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच, भंगी, चमार आदि का न खाना। भला तुम से कोई पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी एक समान वर्तोगे ? जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है, तो क्या मलादि भी खाओगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है ?

(प्रश्न) जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता ?

(उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता, जैसा कि मनुष्य के मल से, (गोमय) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता, न मलीन होता है, जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ भोजन आदि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उससे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उस में झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न की जावे तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इससे पूर्वोक्त दोषों की निवृति हो जाती है जैसा मियां जी के रसोई के स्थान में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूंठी रकेबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े

रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना ! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वमन होने का भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध-स्थान के समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इन से पूछे कि यदि गोबर से चौका लगाने में तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे में कंडे जलाने, उसकी आग से तमाखू पीने, घर की भीति पर लेपन आदि से मियां जी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा इस में क्या सन्देह।

(प्रश्न) चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ?

(उत्तर) जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है।

(प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावें तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन भांडे मांजने आदि बखेड़ों में पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके, देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि, महर्षि आये थे, एक ही पाकशाला से भोजन करते थे। जब से ईसाई, मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ, उन्होंने मद्यपान गोमांसादि का

खाना पीना स्वीकार किया, उसी समय में भोजनादि में बखेड़ा हो गया। देखो! क़ाबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्त देशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि कौरव, पांडवों के साथ खाते पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे क्यों कि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख, दुःख, हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे, भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मतलब होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका निरवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों, इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें।

यह थोड़ा सा आचार-अनाचर, भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा। इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध इसी दशवें समुल्लास के साथ पूरा हो गया। इन समुल्लासों में विशेष खण्डन मण्डन इस लिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य नहीं बढ़ाते तब तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इस लिए प्रथम सब को सत्य शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्द्ध अर्थात जिसमें चार समुल्लास हैं उसमें विशेष खण्डन मण्डन लिखेंगे। इन चारों में से प्रथम समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे में जैनियों के, तीसरे में ईसाइयों और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तर के खण्डन मण्डन के विषय में लिखेंगे और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के

(२)

जाट और पोप जी

जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुँचता है । वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किस की पूँछ पकड़ कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया व गाड़ दिया, फिर पूँछ को कैसे पकड़ेगा ? यहाँ एक दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है कि—

एक जाट था । उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी, दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था । कभी २ पोपजी के मुख में पड़ता था । उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का संकल्प करा लूंगा । कुछ दिनों में दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया । जीभ बन्द हो गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुँचा । उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे । तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान ! अब तू इसके हाथ से गोदान करा । जाट १०) रुपया निकाल पिता के हाथ में रखकर बोला, पढ़ो संकल्प ! पोपजी बोला, वाह २ क्या बाप बारंबार मरता है ? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो । ऐसी गौ का दान कराना चाहिये ।

([illegible]जी) हमारे पास तो एक ही गाय है उसके बिना

किनारे जा वैठे और चटलोई सामने धर दी ।

(जाटजी) तुम बड़े भूठे हो ।

(पोपजी) क्या भूठ किया ।

(जाटजी) कहो तुमने गाय किस लिये ली थी ?

(पोपजी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये ।

(जाटजी) अच्छा तो तुमने वैतरणी नदी के किनारे गाय क्यों नहीं पहुँचाई ? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बाँध वैठे । न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे ?

(पोपजी) नहीं २, वहाँ इस दाम के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन कर उसको उतार दिया होगा ।

(जाटजी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है ?

(पोपजी) अनुमान से कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है । और दक्षिण नैऋत्य दिशा में वैतरणी नदी है ।

(जाटजी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो उसका उत्तर आया हो कि वहाँ पुण्य की गाय बन गई, अमुक के पिता को पार उतार दिया दिखलाओ ।

(पोपजी) हमारे पास गरुड़पुराण के लेख के बिना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं ।

(जाटजी) इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

(पोपजी) जैसे सब मानते हैं ।

(जाटजी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारे जीविका के

(३)

नकटा सम्प्रदाय

कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था । न्यायधीश ने उस का नाक कान काट डालने का दण्ड दिया । जब उस की नाक काटी गई तब वह धूर्त नाचने, गाने और हँसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हँसता है ? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है ! लोगों ने पूछा ऐसी कौन सी बात है ? उस ने कहा बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी । लोगों ने कहा कहो, क्या बात है ? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े, मैं देख कर बड़ा प्रसन्न हो कर नाचता गाता, अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूँ कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ । लोगों ने कहा हम को दर्शन क्यों नहीं होता ? वह बोला नाक की आड़ हो रही है, जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं । उन में से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये । उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ । उसने उस की नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा । उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं, इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है, तब तो वह भी वहाँ उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हँसने और कहने लगा कि मुझ को भी नारायण दीखता है । वैसे होते २ एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदाय का नाम "नारायणदर्शी"

रखा। किसी मूर्ख राजा ने सुना, उन को बुलाया। जब राजा उन के पास गया तब तो ये बहुत कुछ नाचने, कूदने, हँसने लगे। तब राजा ने पूछा यह क्या बात है? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हम को दीखता है।

राजा—हम को क्यों नहीं दीखता?

नारायणदर्शी—जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है।

राजा ने कहा—ज्योतिषी जी मुहूर्त्त देखिये।

ज्योतिषी ने उत्तर दिया—जो हुक्म, अन्नदाता, दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है।

वाह रे पोप जी! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न हो कर नाचने, कूदने और गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ २ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बुड्ढा ९० वर्ष का दीवान था। उस को जा कर उस के परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल, वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित हो के उन नाककटों की बातें सुनाईं। दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिए। बिना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे?

दीवान—झूठ बोलो वा सच, बिना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं ?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ?

दीवान—विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ।

राजा—जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ?

दीवान—विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि कर के ।

राजा—जो विद्वान न मिले तो ?

दीवान—पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है ।

राजा—तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ?

दीवान—मैं बुड्ढा और घर बैठा रहता हूँ और अब थोड़े दिन जीऊँगा भी । इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा ।

राजा—बहुत अच्छी बात है । ज्योतिषी जी दीवान जी के लिये मुहूर्त देखो ।

ज्योतिषी—जो महाराज की आज्ञा । यही शुक्ल पञ्चमी १० बजे का मुहूर्त अच्छा है ।

जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना ले के चलना चाहिये ।

राजा—वहाँ सेना का क्या काम है ?

दीवान—आप को राजव्यवस्था की खबर नहीं है ! जैसा मैं कहता हूँ वैसा कीजिये ।

राजा—अच्छा जाओ भाई सेना को तैयार करो ।

... बजे सवारी कर के राजा सब को ले कर गया ।

छोकरों से धूल राख इस पर डलवा, चौक २ में जूतों से पिटवा, कुत्तों से नुचवा, मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ। यह सम्प्रदायों की लीला है।

(सत्यार्थ प्रकाश से)

प्राचीन पुस्तकें उत्तर, वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर वटेश्वर मैथिल पण्डित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहलेन नामक किसी अपर पण्डित की भी एक टीका है, किन्तु देखने में नहीं आई। महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त ❀ की कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों में और बृहत्कथा में वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चंद्रहास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्वपीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहाँ कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन × राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को वंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उस का नाम पाटलिपुत्र रक्खा

❀ प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चंद्रश्री, मौर्य यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिक वा द्रोहिण, अङ्गुल, कौटिल्य, यह सब चाणक्य के नाम हैं।

× सुदर्शन, सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था, किसी २ ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इस में कोई
हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।
कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और
यहाँ आकर इसिरिस और ओसिरिस नामक देव और देवी की
पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश
बोध होते हैं। किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों
को बुलाया" यह लिखा है। इस देश में पहले कोल और
चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक
इस वंश में प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि इन दोनों को लड़ कर
ब्राह्मणों ने निकाल दिया। इसी इतिहास से भुइंहार जाति
का भी सूत्रपात्र होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइंहारों की
उत्पत्ति वाली किम्वदन्ती इस का पोषण करती है। बहुत दिन
तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे। परन्तु एक जैन
पण्डित 'जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है
कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर
निकाल दिया। कहते हैं कि विहार के पास बारागंज में इसके
किले का चिन्ह भी है। यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के
मत से उदयाश्व ने मगधराज्य संस्थापन किया। इसका समय ५५०
ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इस से तेरहवाँ राजा मानते
हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Eraunobaos (इरन्नो-
बाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है।
मेगस्थनीस अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया
(आठ मील) लम्बा और १५ चौड़ा लिखता है, जिस से स्पष्ट

...न्द नामक विहार भी बना दिया था । फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने । बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे । क्या आश्चर्य्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने पवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो ।

भारत नक्षत्र राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं । इस से बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायंगी ।

सन् ६३७ ई० में जब प्रसिद्ध यात्री हिआन सांग भारतवर्ष में आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था । किन्तु दूसरे इतिहासलेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अन्ध्रवंश का भी राज्यचिन्ह सम्भलपुर में दिखलाते हैं ।

सन् १२९२ ई० में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ । उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार में था । सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतंत्र सूबेदार नियत किया । इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए । फिर मुसलमानों ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा । यहाँ तक कि सन् १३९३ में हिन्दू लोग स्वतंत्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई । यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय

था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़ कर लड़ने आए *। ये और पंजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश में आकर प्राण त्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। [illegible] नामक एक राजा ने सन् १४० के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आर्यमत्सरी दैव ने यह [illegible] स्थिर नहीं रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसल[illegible] कार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश [illegible] शाह के अधिकार में रहा। फिर [illegible] था, किन्तु १४६१ में [illegible] ने फिर [illegible]

बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुईं और
१४६४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इसके पीछे
सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने विहार छोड़ कर
पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०)
यह देश मुगलों के अधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और
चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य
नाम परित्याग कर के औरङ्गजेब के पोते अजीमशाह के नाम
पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१३६७ ई०)
बंगाले के सूबेदारों में सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को
स्वतन्त्र समझा था, किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में
मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से विहार, बंगाल और उड़ीसा का
अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त में जगद्विजयी अङ्गरेजों ने सन्-
१७६३ में पूर्व में पटना अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की
प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप के सिंह चिन्ह की ध्वजा की

बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, इसके
पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्यमन्दिर के ढंग का एक महादेव का
मन्दिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता
है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां रहते थे। पीछे देव में
बसे। देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थीं, इससे दोनों नाम
साथ ही बोले जाते हैं (देवमूंगा) तिल संक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला
लगता है।" इसी से स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये
उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और विहारदर्पण से भी यह
बात पाई जाती है कि मडियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुईं और
१४६४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया । इसके पीछे
सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने विहार छोड़ कर
पटने को राजधानी किया । सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०)
यह देश मुग़लों के अधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और
चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य
नाम परित्याग कर के औरङ्गज़ेब के पोते अजीमशाह के नाम
पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्ध किया । (१३६७ ई०)
बंगाले के सूबेदारों में सब से पहले सिराजुद्दौला ने अपने को
स्वतन्त्र समझा था, किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में
मीरजाफर अङ्गरेजों के बल से विहार, बंगाल और उड़ीसा का
अधिनायक हुआ । किन्तु अन्त में जगद्विजयी अङ्गरेज़ों ने सन्
१७६३ में पूर्व में पटना अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की
प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप के सिंह चिन्ह की ध्वजा की

बना है । देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, इसके
पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्यमन्दिर के ढंग का एक महादेव का
मन्दिर है । पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है । जान पड़ता
है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां रहते थे । पीछे देव में
बसे । देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थीं, इससे दोनों नाम
साथ ही बोले जाते हैं (देवमूंगा) तिल संक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला
लगता है ।" इसी से स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये
इन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं । और विहारदर्पण से भी यह
बात पाई जाती है कि मडियार लोग मेवाड़ से आये हैं ।

छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिन्दुस्तान के मान चि
में लाल रंग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन कहता है—सन्ड्रकुत्तस महापराक्रमी था। असंख
सैन्य-संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इस ने सामना किया था
डियोडारस सिक्यूलस कहता है—प्राच्यदेश के राजा चन्द्रा
के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ औ
४००० हाथी थे यद्यपि यह क्सेण्ड्रमस शब्द चन्द्रमा क
अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी
नाम से लिखा है। क्विन्तास कर्शिअस लिखता है—चन्द्रमा
के दोस्कार पिता ने पहले मगध राज को फिर उस के पुत्रों को
नाश कर के रानी से विवाह किया और उस से हुए पुत्र को
गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो कहता है सेल्यूकस ने मेगास्थनीज को
सन्ड्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य
देकर उस से सन्धि कर लिया। ओरियन लिखता है—मेगास्थ-
नीज अनेक बार सन्ड्रकुत्तस की सभा में गया था। प्लूटार्क ने
चन्द्रगुप्त को [illegible] सेना का मालिक लिखा है। इन सब लेखों
को ऐतिहासिक ग्रन्थों के मिलान से यथापि सिद्ध होता है कि
सिकन्दरशाह [illegible] के पीछे भारतवर्ष [illegible] विप्लव
हुआ और [illegible] का [illegible] और [illegible]
चन्द्रगुप्त राजा हुआ, किन्तु बहुत से यूनानी ग्रन्थकारों ने
चन्द्रगुप्त को [illegible]
को [illegible]

था यह सर्वसाधारण का सिद्धान्त है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० में नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारसदेश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी, वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० में यह सन्धि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई० पू० में चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य कर के मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी में मकता लिखा है। डिगिवनेस कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं। केम्फर लिखता है कि जापानी लोग उसको मगतकफ़ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है।) प्राचीन फ़ारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं; और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है कि मगधराजधानी पाटलीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसिरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामान्तर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निज पुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की,

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चितौर के राजा थे, वे भी मौर्य थे। क्या ये मोरी सब शूद्र थे?

अकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त, जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

दुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इस की दो स्त्रियाँ थीं। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनंद पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न हो कर वरदान दिया। सुनन्दा को एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांस पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य के सौ लड़के थे, जिसमें चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धिमान था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ।

यों ही भिन्न २ कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथायें लिखी हैं। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक

[मुद्राराक्षस का उपसंहार

उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त, जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इस की दो स्त्रियाँ थीं। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनंद पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न हो कर वरदान दिया। सुनन्दा को एक मांसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांस पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य के सौ लड़के थे, जिसमें चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धिमान था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ।

यों ही भिन्न २ कवियों और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथायें लिखी हैं। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ... ता है।

[मुद्राराक्षस का उपसंहार

इशारों से कीजिये। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि वह ईश्वर एक है, एक ऊँगली उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि यह धमकाने के लिये ऊँगली दिखाकर एक आँख फोड़ देने का इशारा करती है, अपनी दो उँगलियाँ दिखलाईं। पण्डितों ने उन दो उँगलियों के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी समय हो गया। रात के समय जब दोनों का एकान्त हुआ, किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा कि वह क्या शोर है। मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उट्र चिल्लाता है। और जब राजकुमारी ने दुहराकर पूछा, तब उट्र की जगह उसट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योतमा को पण्डितों की दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछता कर फूट फूट कर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। पहले तो चाहा कि जान ही दे डालूँ, पर फिर सोच समझ कर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा और थोड़े ही दिनों में ऐसा पण्डित हो गया, जिसका नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पण्डित होकर घर में आया तो जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने के बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य नाटकादि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे हैं। इनकी काव्य-रचना बहुत सादी, मधुर और विषया-नुसारिणी है। अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर [की] उपमा देते हैं। उसके समय में भवभूति नामक एक कवि था

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज, आप यदि मुझे राजा के पास ले चलें और कुछ धन दिला देवें तो मुझ पर आपका बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बना कर राजसभा में सुनाऊँ तो उसका माना जाना कठिन है, इसलिये कोई युक्ति बताइये।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को अपने रत्नों का हार लेना है और जो कुछ मैं कहता हूँ सो यहाँ के कई पण्डितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पण्डित लोग कहें कि यह श्लोक पुराना है तो तुमको रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नये श्लोक का अच्छा पारितोषिक मिलेगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मान कर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उसको राजसभा में पढ़ा तो कविमण्डल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

(२) एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज, मैं अति दरिद्री हूं और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है। मुझपर आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन के निमित्त जाते हैं तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं इसलिये मैं जो ये साँटे के चार टुकड़े देता हूँ सो ले चल
ब्राह्मण घर लौटा और उन साँटे के टुकड़ों को उसने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उसके बिना जाने उन ५

शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने ही देश में मान पाता है और विद्वानों का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा सुन अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को व मुझे नीचा दिखाता है। मैं पण्डितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे व अन्य राजाओं वा धनवानों के यहाँ पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये। महाराजा विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन-सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के लिये मंत्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर वह अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता हुआ अन्त में करनाटक देश में पहुँचा। करनाटक-देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उसके पास आकर कविवर कालिदास ने अपनी कविता शक्ति दिखाई। इस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रह कर प्रति दिन राजसभा में जाने और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राज-काजों में उत्तम सम्मति देने लगा। और अनेक

शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने ही देश में मान पाता है और विद्वानों का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा सुन अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को व मुझे नीचा दिखाता है। मैं पण्डितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे व अन्य राजाओं वा धनवानों के यहाँ पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये। महाराजा विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन-सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के लिये मंत्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर वह अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता हुआ अन्त में करनाटक देश में पहुँचा। करनाटक-देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविता शक्ति दिखाई। इस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रह कर प्रति दिन राजसभा में जाने और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राज-कार्यों में उत्तम सम्मति देने लगा। और अनेक

शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने ही देश में मान पाता है और विद्वानों का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा सुन अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को व मुझे नीचा दिखाता है। मैं पण्डितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे व अन्य राजाओं वा धनवानों के यहाँ पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये। महाराजा विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन-सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के लिये मंत्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर वह अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता हुआ अन्त में करनाटक देश में पहुँचा। करनाटक-देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविता शक्ति दिखाई। इस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रह कर प्रति दिन राज-सभा में जाने और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राज-काजों में उत्तम सम्मति देने लगा। अनेक

शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय-कुल भूषण महाराज विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने ही देश में मान पाता है और विद्वानों का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा सुन अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसा अभिमानी पण्डित है कि मेरे ही सामने पण्डितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को व मुझे नीचा दिखाता है। मैं पण्डितों का विशेष आदर मान करता हूँ और जो मेरे व अन्य राजाओं वा धनवानों के यहाँ पण्डितों का आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये। महाराजा विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन-सम्पत्ति दी थी उसको हर लेने के लिये मंत्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर वह अपने बाल-बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता हुआ अन्त में करनाटक देश में पहुँचा। करनाटक-देशाधिपति बड़ा पण्डित और गुणग्राहक था। उसके पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविता शक्ति दिखाई। इस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उसको अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा से सम्मान पाकर उस देश में रह कर प्रति दिन राजसभा में जाने और वहाँ राजा के सिंहासन के पास ऊँचे आसन पर बैठ सब राज-काजों में उत्तम सम्मति देने लगा। और

एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपये इस चतुराई से लिये थे।

उज्जैन नगरी में राजा भोज ऐसा विद्यारसिक, गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उसने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लाये, उसको एक लाख रुपये दक्षिणा दी जाय। इस बात को सुन कर देश देशान्तर के पण्डित लोग नए आशय के श्लोक बनाकर लाते थे, परन्तु उसकी सभा में चार ऐसे पण्डित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुनने से नया श्लोक कण्ठस्थ हो जाता था। सो जब कोई परदेशी पण्डित राजा की सभा में नवीन आशय का श्लोक बनाकर लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़ के सुनाता था। उस समय राजा अपने पण्डितों से पूछता था कि यह श्लोक नया है वा पुराना। तब वह मनुष्य जिसको कि एक बार के सुनने से कण्ठस्थ होने का अभ्यास था, कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ कर सुना देता था। इसके अनन्तर वह मनुष्य जिसको दो बार सुनने से कंठस्थ हो जाता था, पढ़ के सुनाता और इस प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजा को कण्ठाग्र सुना देते, इस कारण परदेशी विद्वान् अपने मनोरथ से रहित हो जाते थे। और इस बात की चर्चा देश देशान्तर में फैली। परन्तु एक विद्वान ऐसा देश काल में चतुर और बुद्धिमान् निकला कि उसके बनाये हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी

करना पड़ा और वह आशय यह है कि हे तीनों लोक के जीतने-वाले राजा भोज! आपके पिता बड़े धर्मिष्ठ हुये हैं उन्हों ने मुझ से निन्नानवे करोड़ का रत्न लिया है, सो मुझे आप दीजिये और इस वृत्तान्त को आपके सभासद विद्वान् जानते होंगे। उनसे पूछ लीजिये और जो वे कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिये। उस आशय को सुनकर चारों विद्वानों ने विचारांश किया कि जो उसको पुराना आशय ठहरावें तो महाराज को निन्नानवे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख, सो उन चारों ने शीघ्र से यही कहा कि पृथ्वीनाथ! यह नवीन आशय का श्लोक है। इस पर राजा ने उस विद्वान् को एक लाख रुपये दिये।

पर इन कथाओं से भी यह गड़बड़ पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है।

राजा लक्ष्मणसिंह

महर्षि कण्व का आश्रम

सारथी—जो आज्ञा । (पहिले रथ को भरदौड़ चलाया फिर मंद किया) देखिये, रास छोड़ते ही घोड़े सिमट कर कैसे झपटे कि टापों की धूल भी साथ न लगी, केश खड़े करके और कनौती उठाकर घोड़े दौड़े क्या है उड़ आये हैं ।

दुष्यन्त—सत्य है, ऐसे झपटे कि छिन भर में हरिण से आगे बढ़ आये । जो वस्तु पहले दूर होने के कारण छोटी दिखाई देती थी सो अब बड़ी जान पड़ती है, और जो मिली हुई सी थी, सो अब अलग अलग निकली, जो टेढ़ी थी सो सीधी हो गई । पहियों के वेग से थोड़े काल तक तो धुर और नगीच में कुछ अन्तर ही न रहा था । अब देखो हम इसे गिराते हैं । (धनुष पर बाण चढ़ाया हुआ) ।

(नेपथ्य में) इसे मत मारो, यह आश्रम का मृग है ।

सारथी—(शब्द सुनता हुआ और देखता हुआ) महाराज ! बाण के सम्मुख हरिण तो आया, परन्तु ये दो तपस्वी नाहीं करते हैं कि इसे मारो मत ।

दुष्यन्त—अच्छा, तो घोड़ों को रोको ।

सारथी—जो आज्ञा । (रास खैंचता हुआ) ।

(एक तपस्वी और उसका चेला आया)

तपस्वी—(बाँह उठाकर) हे राजा, यह मृग आश्रम

है, इसको मत मारो। देखो, इसको मत मारो। इसके कोमल शरीर में जो बाण लगेगा सो मानो रुई के पुंज में आग लगेगी। कहाँ तुम्हारे वज्रबाण, कहाँ इसके अल्प प्राण। हे राजा, बाण को उतार लो, यह तो दुखियों की रक्षा के निमित्त है, निरपराधियों पर चलाने को नहीं है।

दुष्यन्त—(नमस्कार करके) लो, मैं तीर को उतार लेता हूँ। (बाण उतार लिया)।

तपस्वी—(हर्ष से) हे पुरुकुल-दीपक, आप को यही उचित है। लो हम भी आशीर्वाद देते हैं कि आप के आप ही सा चक्रवर्ती और धर्मात्मा पुत्र हो।

चेला—(दोनों हाथ उठाकर) आप का पुत्र धर्मात्मा और चक्रवर्ती हो।

दुष्यन्त—(प्रणाम करके) ब्राह्मणों का वचन सिर माथे।

तपस्वी—हे राजा, हम यज्ञ के लिये समिध लेने जाते हैं। आगे मालिनी के तट पर गुरु कण्व का आश्रम दिखाई देता है। आप को अवकाश हो तो वहाँ जाकर अतिथि-सत्कार लीजिये। इन साधु तपस्वियों के धर्म-कार्य निर्विघ्न होते देखकर आप भी जानेंगे कि कैसी यह भुजा है, जिसमें प्रत्यंचा की फटकार के चिह्न [illegible] केवल सत्पुरुषों की रक्षा होती है।

दुष्यन्त—तुम्हारे गुरु आश्रम में हैं या नहीं?

तपस्वी—अभी तो अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि-सत्कार का भार देकर आप [illegible] के लिये [illegible] गये हैं।

दुष्यन्त—अच्छा, हम अभी आश्रम के [illegible]

स कन्या को भी देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव महर्षि से कहेगी।

तपस्वी—आप पधारिए, हम भी अपने कार्य को जाते हैं।

(तपस्वी अपने चेले समेत गया)।

दुष्यन्त—सारथी, रथ को हाँको। इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें।

सारथी—जो आज्ञा। (रथ बढ़ाया)

दुष्यन्त—(चारों ओर देखकर) कदाचित किसी ने बतलाया न होता भी यहाँ हम जान लेते कि अब तपोवन समीप है।

सारथी—महाराज, ऐसे आप ने क्या चिह्न देखे ?

दुष्यन्त—क्या तुमको चिन्ह नहीं दिखाई देते हैं ? देखो, वृक्षों के नीचे तोतों के मुख के गिरा सुन पड़ा है, ठौर-ठौर हिंगोट कूटने की चिकनी शिला रक्खी है। मनुष्यों से हरिया के बच्चे ऐसे हिलमिल रहे हैं कि हमारी आहट पाकर कुछ भी नहीं चौंके। जैसे अपने खेलकूद में मगन थे वैसे ही बने हैं। उधर देखो यज्ञ की सामग्री के छिलके बह बह के आते हैं तिनसे नदी में कैसी लकीर सी बँध रही है। फिर देखो वृक्षों की जड़ पवित्र बरहों के प्रभाव से धुलकर कैसी चमकती हैं और होम के धुएँ से नए पत्तों की कान्ति कैसी धुँधली हो रही है। देखो उस उपवन के आगे की भूमि में जहाँ की दाभ यज्ञ के लिये कट गई है, मृगछौने कैसे धीरे-धीरे निधड़क चरते हैं!

सारथी—महाराज! अब मैंने भी तपोवन के चिह्न देखे।

दुष्यन्त—(थोड़ी दूर चलकर) सारथी, तपोवन-वासियों

पं० बालकृष्ण भट्ट

कल्पना-शक्ति

मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों में कल्पनाशक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है, यद्यपि अभ्यास से यह शतगुण अधिक हो सकती है पर इसका सूक्ष्म अंकुर किसी-किसी के अन्तःकरण में आरम्भ ही से रहता है, जिसे प्रतिभा के नाम से पुकारते हैं और जिसका कवियों के लेख में पूर्ण उद्गार देखा जाता है। कालिदास, श्रीहर्ष, शेक्सपिर, मिल्टन प्रभृति कवियों की कल्पनाशक्ति पर चित्त चकित और मुग्ध हो, अनेक तर्क वितर्क की भूलभुलैया में चक्कर मारता, टकराता, अन्त को इसी सिद्धान्त पर आकर ठहरता है कि यह कोई प्राक्तन संस्कार का परिणाम है या ईश्वर प्रदत्तशक्ति (Genius) है। कवियों का अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा ब्रह्मा के साथ होड़ करना कुछ अनुचित नहीं है, क्योंकि जगतस्रष्टा तो एक ही बार जो कुछ बन पड़ा सृष्टि-निर्माण-कौशल दिखाकर आकल्पान्त फरागत हो गये, पर कविजन नित्य नई-नई रचना के गढ़न्त से न जाने कितनी सृष्टिनिर्माण-चातुरी दिखलाते रहते हैं।

यह कल्पनाशक्ति कल्पना करने वाले के हृद्गत भाव या मन के परखने की कसौटी या आदर्श है। शान्त या वीर प्रकृति-वाले से शृङ्गाररस-प्रधान कल्पना कभी न बन पड़ेगी। महाकवि तिराम और भूषण इनके उदाहरण हैं। शृङ्गाररस से

परिणत होते देख यहाँ वालों को हाथ मलमल पछताना और कलपना पड़ा।

प्रिय पाठक ! कल्पना बुरी बला है। चौकस रहो, इसके पेंच में कभी न पड़ना, नहीं तो पछताओगे। आज हमने भी इस कल्पना की कल्पना में पड़ बहुत सी भारी-भारी कल्पना कर आपका थोड़ा सा समय नष्ट किया, क्षमा करियेगा।

(साहित्य-सुमन से)

परिणत होते देख यहाँ वालों का हाथ मलमल पछताना और कल्पना पड़ा।

प्रिय पाठक ! कल्पना बुरी बला है। चौकस रहो, इसके पेंच में कभी न पड़ना, नहीं तो पछताओगे। आज हमने भी इस कल्पना की कल्पना में पड़ बहुत सी भारी-भारी कल्पना कर आपका थोड़ा सा समय नष्ट किया, क्षमा करियेगा।

(साहित्य-सुमन से)

अपनी शान से वईद समझते हैं। नौकरी बी० ए०, एम० ए०, पास करने वालों को भी उचित रूप में मुशकिल से मिलती है। ऐसी दशा में हमें होली सूझती है कि दिवाली !

यह ठीक है। पर यह भी सोचो कि हम तुम वंशज किन के हो ? उन्हीं के न, जो किसी समय वसंत-पंचमी ही से—

"आई माघ की पांचैं बूढ़ी डोकरियां नाचैं"

का उदाहरण बन जाते थे, पर जब इतनी सामर्थ्य न रही तब शिवरात्रि से होलिकोत्सव का आरम्भ करने लगे। जब इस का भी निर्वाह कठिन हुआ तब फागुन सुदी अष्टमी से—

"होरी मध्ये आठ दिन, व्याह मांह दिन चार।
शठ, पण्डित, वेश्या, वधू, सबै भये इकसार॥

का नमूना दिखलाने लगे। पर उन्हीं आनन्दमय पुरुषों के वंश में होकर तुम ऐसे महर्रमी बने जाते हो कि आज तिवहार के दिन भी आनन्द से होली का शब्द तक उच्चारण नहीं करते। सच कहो कहीं 'होली बाइबिल' की हवा लगने से हिन्दूपन को सलीब पर तो नहीं चढ़ा दिया ?

तुम्हें आज क्या सूझी है, जो अपने पराये सभी पर मुँह चला रहे हो ? होली बाइबिल अन्य धर्म का ग्रन्थ है, उस के मानने वाले विचारे पहले ही से तुम्हारे साथ का भीतरी-बाहिरी सम्बन्ध छोड़ देते हैं। पहिली उमंग में कुछ दिन तुम्हारे मत पर कुछ चोट चला भी दिया करते थे, पर अब बरसों से वह चर्चा भी न होने के बराबर हो गई है। फिर, उन छुटे हुये भाइयों पर क्यों बौछार करते हो ? ऐसी ही लड़ास लगी हो तो उन से जा भिड़ो जो अभी तुम्हारे ही कहलाते हैं, तुम्हारे

पर हाँ यह तो कहेंगे कि तुम्हारी बातें कभी कभी समझ में नहीं आतीं। इस से मानने को जी नहीं चाहता।

यह ठीक है, पर याद रक्खो कि हमारी बातें मानने का प्रयत्न करोगे तो समझ में भी आने लगेंगी, और प्रत्यक्ष फल भी देंगी।

अच्छा साहब मानते हैं, पर यह तो बतलाइये जब हम मानने के योग्य ही नहीं हैं तो कैसे मान सकते हैं ?

छि: क्या समझ है। अरे बाबा! हमारी बातें मानने में योग्य होना और सकना आवश्यक नहीं है। जो बातें हमारे मुँह से निकलती हैं वह वास्तव में हमारी नहीं हैं, और उन के मानने की योग्यता और शक्ति हम को तुम को क्या किसी को भी तीन लोक और तीन काल में नहीं है। पर इस में भी सन्देह न करना कि जो कोई चुपचाप आँखें मीच के मान लेता है वह परमानन्द-भागी हो जाता है।

हि हि ! ऐसी बातें मानने को तो कौन आता है, पर सुनकर परमानन्द तो नहीं, हां, मसखरेपन का कुछ मज़ा ज़रूर पा जाता है।

भला हमारी बातों में तुम्हारे मुँह से हिहि तो निकली ! इस तोबड़ा-से लटके हुए मुँह के टाँकों के समान दो तीन दांत तो निकले। और नहीं तो, मसखरेपन ही का सही, मज़ा तो आया। देखो आँखें मट्टी के तेल की रोशनी और कुल्हिया के ऐनक की चमक से चौंधिया न गई हों तो देखो। छत्तिसों जात, बरंच अजात के जूठे गिलास की मदिरा तथा भच्छ अभच्छ की गन्ध से अकिल भाग न गई हो तो समझो। हमारी "

जिस में कुछ देर के लिये होली के काम के हो जाओ, यह नेस्ती काम की नहीं।

वाह तो क्या मदिरा पिलाया चाहते हो ?

यह कलयुग है। बड़े बड़े वाजपेयी पीते हैं। पीछे से बल, बुद्धि, धर्म, धन, मान, प्रान सब स्वाहा हो जाय तो बला से ! पर थोड़ी देर उस की तरङ्ग में "हाथी मच्छर, सूरज जुगनू" दिखाई देता है। इस से, और मनोविनोद के अभाव में, उसके सेवकों के लिए कभी कभी उस का सेवन कर लेना इतना बुरा नहीं है जितना मृत-चित्त बन बैठना। सुनिए ! संगीत, साहित्य, सुरा और सौंदर्य के साथ यदि नियम-विरुद्ध बर्ताव न किया जाय तो मन की प्रसन्नता और एकाग्रता को कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है, और सहृदयता की प्राप्ति के लिए इन दो गुणों की आवश्यकता है, जिन के बिना जीवन की सार्थकता दुःसाध्य है।

बलिहारी है, महाराज इस क्षणिक बुद्धि की। अभी तो कहते थे कि मन को किसी झगड़े में फँसने न देना चाहिए, और अभी कहने लगे कि मन की एकाग्रता के बिना सहृदयता तथा सहृदयता के बिना जीवन की सार्थकता दुःसाध्य है ! धन्य हैं, यह सरगापत्ताली बातें ! भला हम आप को अनुरागी समझें या विरागी ?

अरे हम तो जो हैं वही हैं, तुम्हें जो समझना हो समझ लो। हमारी कुछ हानि नहीं है। पर यह सुन रक्खो, सीख रक्खो, समझ रक्खो कि अनुराग और विराग वास्तव में एक ही हैं। जब तक एक ओर अचल अनुराग न होगा तब तक जगत् के खटराग में विराग नहीं हो सकता, और जब तक सब ओर से आंतरिक

एतदनुसार आज हमारी होली है। चित शुद्ध कर के वर्ष-भर की कही सुनीं क्षमा कर के, हाथ जोड़ के, पाँव पड़ के, मित्रों को मना के, बाहें पसार के उन से मिलने और यथासामर्थ्य जी खोल के परस्पर की प्रसन्नता सम्पादन करने का दिन है। जो लोग प्रेम का तत्व तनिक भी नहीं समझते केवल स्वार्थ-साधन ही को इतिकर्तव्य समझते हैं, पर हैं अपने ही देश जाति के, उन से घृणा न कर के ऊपरी अमोद-प्रमोद में मिला के समयान्तर में मित्रता का अधिकारी बनाने की चेष्टा करने का त्यौहार है। जो निष्प्रयोजन हमारी बात बात पर झुकरते ही हों उन्हें उन के भाग्य के अधीन छोड़ के अपनी मौज में मस्त रहने का समय है। इसी से कहते हैं, नई बहू की नाँई घर में न घुसे रहो, पर्व के दिन मन मार के न बैठो, घर बाहर, हेती व्यौहारी से मानसिक आनन्द के साथ कहते फिरो—हो ओ ओ ओ ली ई ई ई है।

[निबन्ध-नवनीत से]

बकबक पर ध्यान न दें, तो उनकी क्या हानि है। यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों समझ लेना कि—

जाके ढिगि वहु गारी ह्वै हैं, सोई गारी दैहै।
गारीवारो आपु कहैहै, हमरो का घटि जैहै॥

कोई समझते हैं कि "जो हम को गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तब तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी"। पर यह उल्टी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढ़ता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको किसने गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र से झगड़ा चला। झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे, पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिये, पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को अच्छी न लगी। वशिष्ठ जी ने कहा कि आप क्षत्रिय थे, पर तपस्वी हैं। इसलिये राजर्षि कहला सकते हैं, परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इस बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी से शत्रुता बाँधी। विश्वामित्र बार बार अधिक अधिक तप करके आते थे और वशिष्ठ जी से झगड़ा करते थे, पर वशिष्ठ जी उस पर क्षमा ही रखते थे। पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप कर आकर वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमें ब्राह्मण कहो, नहीं तो युद्ध करो। वशिष्ठ जी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े हो गये। विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र चलाने लगे, परन्तु वशिष्ठ जी ने अपने तपोबल से सब को उसी दण्ड पर रोका। जब विश्वामित्र कोटि

समझ बैठे हैं तो हमारी दृष्टि में ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आपके हृदय में अहंकार नहीं, क्रोध नहीं, छल नहीं, ईर्ष्या नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं, बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सब से बड़े हैं। विश्वामित्र जी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठ जी का इतना भारी क्षमागुण देख कर सब को आश्चर्य हुआ। इसलिये चित्त को स्थिर करके रखना चाहिये कि—

दोहा—छमा सकल गुन सों बड़ी, छमा पुन्य को मूल।
छमा जासु हिरदे रहै, तासु देव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत बसु जाम।
क्षमाशील निज गुनन ते, सुखी रहत सब ठाम॥

सुखी हैं या दुःखी, खाना खाया है वा यों ही दिन भर पहाड़ों
शृंग गिनते फिरते हैं, कहाँ की सैर की है, और किन किन
श्यों को देख, परमात्मा की असीम कृपा और सौन्दर्य्य को
द्गद् हो सराहा है, किन किन झरनों से मिले हैं, दोपहरी को
रूप में किस ठौर बैठे हैं, और किस शृंग पर चढ़ इस प्यारी
वसुमती की शोभा नेत्र भर देखी है। यद्यपि मनुष्यों से वह भी
स्थली पूर्ण थी, पर हम से उनसे प्रयोजन ही क्या था। उनका
देखना चित्रों का दर्शन सा करना था। कारण, न चित्र ही संलाप-
सुख दे सकता है और न वे अज्ञात लोग ही कुछ कह सुन सकते
थे। इसी से कवियों ने यह ठीक ही कहा है—"जन-संदोह जहाँ
उपस्थित हों, वहाँ भी परम एकान्त है।" जन्मभूमि कुछ ऐसी
प्यारी वस्तु है कि जब शकुन्तला अपने पिता कण्व के घर से
विदा होने लगी तो वह अपनी पोसी हुई एक एक लता और
वृक्षों से मिली, अपनी प्रिय सखी प्रियंवदा को उनके यथार्थ
पोषण और पालन को सहेजती, मृगशावकों को चूमती, उनके
अंचल को न छोड़ने पर रो कर कहती कि वे उसे पति के घर
जाने की आज्ञा दें। कवि कहता है कि शकुन्तला के जाते समय
सब पक्षियों ने गाने के मिस आशीर्वाद दिया, उदार वन-देवियों
ने अपने सुवर्ण के सब आभूषण उसे भेंट में दिये। कादम्बरी
में जब एक शुक अपने शल्मली वृक्ष का वर्णन करने लगता है,
जहाँ कि उसकी शिशुता व्यतीत हुई थी, तो सब वस्तु से उस
वृक्ष की समता देता हुआ भी वह नहीं तृप्त होता। इसमें सन्देह
नहीं कि जैसे नृप अपने सहस्रों ध्वजाओं से अलंकृत प्रासाद
को प्यार करता है, जैसे बड़े लोग अपने सजे-धजे महलों का

जोड़ी वर्षा-पर्य्यन्त हमारे तड़ाग ही में निवास करती और अपने छोटे बच्चों को लिये हुए सदैव चरती घूमती है। जैसे ही वह पुष्ट हो उड़ने योग्य हो जाते हैं और उधर शरद् ऋतु की तीव्र किरणें वसुन्धरा की स्निग्धता को चूसना प्रारम्भ करती हैं, वैसे ही वह दम्पति भी विदा हो जाते, परन्तु वर्षा आने के निकट पुनः दर्शन दिया करते हैं।

स्वदेशानुरागी स्काटलैण्ड का वृद्ध इन्द्रजालिक स्काट कहता है—"क्या इस घने विश्व में कोई ऐसा भी नितान्त क्लीव आत्मा है, जो अपने देश का नाम सुनते ही न उछल पड़े, और एकाएक यह न कहने लगे कि यही मेरी जन्मभूमि है, यही मातृ-भूमि है, यही हमारे पूर्वजों की जन्मस्थली है।" वह कौन ऐसा आत्म-परायण है जो विदेश भ्रमणकर थकित गात हो, जब अपनी प्रिय जन्मभूमि की ओर पद रक्खे, तो स्वदेश-स्नेह और अनुराग से न उछलने लगे ? यदि कोई ऐसा है, तो उसे आँख खोल देख लो, क्योंकि ऐसे नीच के विषय में कवि की लेखनी कभी उच्छ्वास नहीं लेती, चाहे वह कैसा ही लक्ष्मीवान्, कीर्तिमान् वा उपाधियों से भूषित क्यों न हो, क्योंकि यह सब शक्तियाँ, अर्थात् उपाधि, धन और कीर्ति, उसने एकमेव स्वार्थ-साधन ही में लगाई हैं, इससे जीते जी वह अपनी अमल कीर्ति, को लोप होते देखेगा, और इस प्रकार मृत्यु के स्मारक स्तम्भ पर कभी कवि की अमरकारी टाँकी का शब्द न सुन पड़ेगा, और न उसकी समाधि किसी के प्रमाश्रु से सींची जायगी। इसमें सन्देह नहीं कि जैसा स्नेह, प्यार तथा आदर मनुष्य अपने देश का करता है, वैसा कदाचित् वह दूसरे देश का नहीं कर सकता। इस